सन्मति-साहित्य रत्न माला का रत्न ६६ वाँ

पुस्तक
सूक्ति त्रिवेणी
(द्वितीय खण्ड : बौद्धधारा)

संपादक
उपाध्याय अमरमुनि

विषय
पालि बौद्ध वाङ्मय की सूक्तियाँ

पुस्तक पृष्ठ
एक सौ पचास

प्रथम प्रकाशन
१५ नवम्बर १९६७

प्रकाशक
सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी आगरा-२

मूल्य तीन रुपए

मुद्रक
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजा की मण्डी आगरा-२

सम्पादकीय

भारतीय धर्मों की पवित्र त्रिवेणी में बौद्ध धर्म की धारा का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। भारतीय चिन्तन क्षेत्र में श्रमण संस्कृति का स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय योगदान है। जल धारा के समान ही यह पवित्रधारा भी ढाई हजार वर्ष से दूर दूर तक के भारतीय मानसों को स्पर्श करती हुई अविरल गति से बह रही है। भारत ही नहीं किन्तु चीन जापान लंका बर्मा कम्बोडिया थाई देश आदि अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को भी इसने प्रभावित किया है और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय धर्म के रूप में अपने को प्रस्थापित किया है। तथागत बुद्ध के नैतिक उपदेशों को लेकर सहस्राधिक वर्षों में सहस्राधिक श्रमण भिक्षु विश्व के दूर दूर तक के प्रदेशों में चारिका करते हुए जन जीवन के विकास तथा अभ्युदय के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं।

भगवान बुद्ध तथा उनके प्रमुख शिष्यों के आध्यात्मिक एवं नैतिक उपदेश उनका पवित्र जीवन एवं उत्तरकालीन परम्परा के महत्वपूर्ण तथ्य में आज भी त्रिपिटक के रूप में सुरक्षित है। त्रिपिटक साहित्य भारतीय वाङ्मय का एक महत्वपूर्ण अंग है। उसमें यत्र-तत्र बहुत सुन्दर एवं मार्मिक उपदेश-वचन नीतिबोध और वैराग्य की प्रेरणा देने वाली बहुत सी गाथाएं संगृहीत की गई हैं। त्रिपिटक साहित्य मूल पालि में है किन्तु उसके अनेक अनुवाद विवेचन एवं टीकाग्रन्थ बर्मी सिंहली, अंग्रेजी आदि भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं। प्राचीनकाल में ही तथागत के उपदेशप्रधान वचनों का सार संग्रह *धम्मपद में बहुत सुन्दर रीति से संकलित किया गया है जिसके भारतीय तथा* भारतीयेतर भाषाओं में अनेक अनुवाद हो चुके हैं।

सूक्ति त्रिवेणी की बौद्धधारा का संकलन जब करने लगा तो भगवान बुद्ध के उपदेशों के अनेक संग्रह मेरे सामने आए एवं पारखी ग्राहक की दृष्टि से देखने पर मुझे उनसे सन्तोष नहीं हुआ। कुछ संग्रह सिर्फ अनुवाद मात्र थे कुछ मूल पालि में ही संकलित थे। उनमें भी कुछ अमुक दो चार ग्रन्थों तक ही सीमित थे। इसलिए विचार हुआ कि सम्पूर्ण बौद्ध वाङ्मय रूप रत्नाकर का

आलोडन करके कुछ नवीन और कुछ मौलिक विचारमणियाँ प्राप्त की जायँ। इस दृष्टि से मूल त्रिपिटक का अनुशीलन करके उनमें से शाश्वत सत्य को प्रकट करने वाले वचनों का संकलन करना प्रारम्भ किया।

भगवान बुद्ध के उपदेशप्रद सुभाषित वैसे भी बहुत ही सुन्दर, मोहक एवं मार्मिक हैं। कहीं कहीं कुछ वचनों की व्यंजना तो बहुत ही रसपूर्ण तथा मर्मस्पर्शी हुई है। जीवन में श्रेय और प्रेय की साधना में उनका अध्ययन बहुत ही प्रभावशाली हो सकता है। मानव को जीवन निर्माण की एक शाश्वत प्रेरणा उनसे प्राप्त हो सकती है। इस संकलन में मेरी दृष्टि मुख्य रही है।

मूल पालि से हिन्दी में अनुवाद करने में कुछ कठिनाइयाँ भी आईं। वर्तमान पाठक का इस परम्परा से अधिक सम्पर्क नहीं रहा है, और पालि भाषा से तो लगभग नगण्य है ही। इस स्थिति में परम्परागत पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या के बिना अर्थबोध दुर्गम हो सकता था। इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए अनुवाद की शैली में कुछ संशोधन किया गया है। मूल का शब्दानुवाद नहीं करके भावानुवाद करने का प्रयत्न किया है और पारिभाषिक शब्दों का अर्थ भी अनुवाद के साथ ही कर दिया गया है। मेरा प्रयत्न यही रहा है कि पाठक को समझने के लिए अर्थ की शब्द जाल में न उलझाया जाय ताकि पाठकों की इस प्रकार के सांस्कृतिक साहित्य के अनुशीलन की अभिरुचि कम न हो।

पालि बौद्ध साहित्य में 'विसुद्धिमग्गो' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य बुद्धघोष की यह रचना आध्यात्मिक क्षेत्र में एक अनुपम कृति है। यद्यपि यह त्रिपिटक में परिगणित नहीं है, फिर भी इसका महत्व त्रिपिटक से कुछ कम नहीं है। अतः प्रस्तुत संकलन में विसुद्धिमग्गो के सुवचनों को लेने का लोभ भी मैं संवरण नहीं कर सका।

जैसा भी मैं कुछ कर सकता था, मैंने कर दिया। अब रहा इस संकलन की उपादेयता और सफलता का मूल्यांकन, वह तो पाठकों की पारखी दृष्टि ही करेगी। मैं तो अपने प्रयत्न की सिद्धि से ही आत्मतोष अनुभव करने वाला हूँ।

कार्तिक पूर्णिमा
वि० २०१८ आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि

प्रकाशकीय

चिर अभिलषित चिर प्रतीक्षित-सूक्ति त्रिवेणी का सुन्दर और महत्वपूर्ण संकलन अपने प्रिय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हम अपने को गौरवान्वित समझते हैं।

जैन जगत के बहुश्रुत मनीषी, उपाध्याय श्री अमरमुनि जी की चिन्तन एवं ओजपूर्ण लेखनी से वर्तमान का जैन समाज ही नहीं किन्तु भारतीय संस्कृति और दर्शन का प्राय प्रत्येक प्रबुद्ध जिज्ञासु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परिचित है। निरन्तर बढती जाती वृद्धावस्था साथ ही अस्वस्थता के कारण उनका शरीरबल क्षीण हो रहा है किन्तु जब प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में वे आठ आठ दस-दस घण्टा सतत संलग्न रहे हैं पुस्तकों के बीच खोए रहे हैं तब लगा कि उपाध्याय श्री जी अभी युवा हैं उनकी साहित्य श्रम साधना अभी भी वैसी ही सतत है जैसी कि निशीथ भाष्य चूर्णि के संपादन के समय थी।

'सूक्ति त्रिवेणी' सूक्ति और सुभाषितों के क्षेत्र में अपने साथ एक नवीनयुग का आरम्भ लेकर आ रही है। इस प्रकार के तुलनात्मक और अनुशीलनपूर्ण मौलिक संग्रह का अब तक भारतीय वाङ्मय में प्राय अभाव-सा था उस अभाव की पूर्ति एक प्रकार से नवीन युग का प्रारम्भ है।

इस महत्वपूर्ण संकलन का प्रकाशन एक ऐसी दिशा में हो रहा है जो अपने समग्र जैन समाज के लिए महत्वपूर्ण अवसर है। श्रमण भगवान महावीर की पच्चीससौवीं निर्वाण तिथि मनाने के सामूहिक प्रयत्न योजना के साथ चल रहे हैं। विविध प्रकार के साहित्य प्रकाशन की योजनाएं बन रही हैं। सन्मति ज्ञान पीठ अपनी विशुद्ध परम्परा के अनुरूप इस प्रकार के सांस्कृतिक प्रकाशनों की दिशा में सदा संलग्न रहा है तथा वर्तमान में और अधिक तत्परता के साथ संलग्न है। सूक्ति त्रिवेणी का यह महत्व पूर्ण प्रकाशन इस अवसर पर पहला ऐतिहासिक उपहार है।

सूक्ति त्रिवेणी की तीनों धाराएं संयुक्त रूप से आकार में बडी हो गई थीं। पाठकों की विभिन्न रुचियों को ध्यान में रखते हुए इसे संयुक्त रूप में भी और अलग-अलग खण्डों में भी प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। तदनुसार जैन धारा के रूप में प्रथम खण्ड पाठकों की सेवा में पहुँच चुका है। बौद्ध धारा का यह द्वितीय खण्ड प्रस्तुत है तथा वैदिक धारा का तृतीय खण्ड भी शीघ्र ही हम प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

—मंत्री
सन्मति ज्ञान पीठ

सुत्तपिटक
दीघनिकाय की सूक्तियाँ

●

१ शील से प्रज्ञा (=ज्ञान) प्रक्षालित होती है प्रज्ञा से शील (आचार) प्रक्षालित होता है।

जहाँ शील है वहाँ प्रज्ञा है। जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील है।

२ गहन अन्धकार से आच्छन्न रागासक्त मनुष्य सत्य का दर्शन नहीं कर सकते।

३ जिस पर देवताओं (दिव्यपुरुषों) की कृपा हो जाती है वह व्यक्ति सदा मंगल ही देखता है अर्थात् कल्याण ही प्राप्त करता है।

४ भिक्षुओ! सत्त्व अप्रमत्त स्मृतिमान् (सावधान) और सुशील (सदाचारी) होकर रहो।

५. जो भी संस्कार (कृत वस्तु) हैं सब व्ययधर्मा (नाशवान्) हैं। अतः अप्रमाद के साथ (आलस्य रहित होकर) जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो।[1]

६ सभी संस्कार (उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ) अनित्य हैं उत्पत्ति और क्षय स्वभाव वाले हैं। अस्तु जो उत्पन्न होकर नष्ट हो जाने वाले हैं उनका शान्त हो जाना ही सुख है।[2]

१—बुद्ध की अन्तिम वाणी। २—बुद्ध के निर्वाण पर देवेन्द्र शक्र की उक्ति।

सुत्तपिटक

दीघनिकाय की सूक्तियाँ[1]

●

१ सीलपरिधोता पञ्ञा पञ्ञापरिधोतं सील।
यत्थ सील तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सील।

—१।४।१४

२ रागरत्ता न दक्खति तमोखन्धेन आवुटा।

—२।१।६

३ देवतानुकम्पितो पोसो, सदा भद्रानि पस्सती।

—२।३।६

४ अप्पमत्ता सतीमन्तो सुसीला होथ भिक्खवो!

—२।३।१७

५ वयधम्मा सखारा अप्पमादेन सम्पादेथा।

—२।३।३१

६ अनिच्चा वत सखारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो॥

—२।३।२३

१—भिक्षु जगदीश काश्यप संपादित, नव नालन्दामहाविहार संस्करण।

सुत्तपिटक

दीघनिकाय की सूक्तियां

●

१ शील से प्रज्ञा (=ज्ञान) प्रक्षालित होती है, प्रज्ञा से शील (आचार) प्रक्षालित होता है।

जहाँ शील है वहाँ प्रज्ञा है। जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील है।

२ गहन अन्धकार से आच्छन्न रागासक्त मनुष्य सत्य का दर्शन नहीं कर सकते।

३ जिस पर देवताओं (दिव्यपुरुषों) की कृपा हो जाती है वह व्यक्ति सदा मंगल ही देखता है अर्थात् कल्याण ही प्राप्त करता है।

४ भिक्षुओ! सदैव अप्रमत्त स्मृतिमान् (सावधान) और सुशील (सदाचारी) होकर रहो।

५ जो भी संस्कार (कृत वस्तु) हैं सब व्ययधर्मा (नाशवान्) हैं। अतः अप्रमाद के साथ (आलस्य रहित होकर) जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो।[1]

६ सभी संस्कार (उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ) अनित्य हैं, उत्पत्ति और क्षय स्वभाव वाले हैं। अस्तु जो उत्पन्न होकर नष्ट हो जाने वाले हैं उनका शान्त हो जाना ही सुख है।[2]

१—बुद्ध की अन्तिम वाणी। २—बुद्ध के निर्वाण पर देवेन्द्र शक्र की उक्ति।

७ दुक्खा सापेक्खस्स कालं किरिया,
गरहिता च सापेक्खस्स काल किरिया।

—२।४।१३

८ सारथीव नेत्तानि गहेत्वा इन्द्रियाणि रक्खन्ति पण्डिता।

—२।७।१

९ पियाप्पिये सति इस्सामच्छरियं होति,
पियाप्पिये असति इस्सामच्छरियं न होति।

—२।८।१

१० छन्दे सति पियाप्पियं होति,
छन्दे असति पियाप्पियं न होति।

—२।८।३

११ सक्कच्चं दानं देथ सहत्था दानं देथ,
चित्तीकतं दानं देथ अनपविद्धं दानं देथ।

—२।१०।५

१२ याव अत्तानं न पस्सति, कोत्थु ताव ब्यग्घो ति मञ्ञति।

—३।१।६

१३ लाभसक्कारसिलोकेन अत्तानुक्कंसेति परं वम्भेति,
अयं पि खो निग्रोध तपस्सिनो उपक्किलेसो होति।

—३।२।४

१४ तपस्सी अक्कोधनो होति अनुपनाही।

—३।२।५

१५. तपस्सी अनिस्सुकी होति अमच्छरी।

—३।२।५

१६ अत्तदीपा भिक्खवे विहरथ अत्तसरणा, अनञ्ञसरणा।

—३।३।१

७ कामनायुक्त मृत्यु दु खरूप होती है, कामनायुक्त मत्यु निम्नोय होती है।

८ जिस प्रकार सारथि लगाम पकड़ कर रथ के घोड़ों को अपने वश म किए रहता है उसी प्रकार ज्ञानी साधक ज्ञान के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश म रखते हैं।

६ प्रिय-अप्रिय होने से ही ईर्ष्या एव मात्सय होते हैं।
प्रिय-अप्रिय के न होने से ईर्ष्या एव मात्सय नहीं होते।

१० छन्द (कामना-चाह) के होने म ही प्रिय-अप्रिय होते हैं। छन्द के न होने से प्रिय अप्रिय नहीं होते।

११ सत्कारपूवक दान दो अपने हाथ से दान दो, मन से दान दो ठीक तरह से दोषरहित दान दो।

१२ जब तक अपने आपको नहीं पहचानता तब तक सियार अपने को व्याघ्र समझता है।

१३ जो लाभ सत्कार और प्रशसा होने पर अपने को बडा समझने लगता है और दूसरो को छोटा हे निग्रोध ! यह तपस्वी का उपक्लेश है।

१४ सच्चा तपस्वी क्रोध और वैर से रहित होता है।

१५ सच्चा तपस्वी ईर्ष्या नहीं करता, मात्सय नहीं करता।

१६ भिक्षुओ ! आत्मदीप (स्वय प्रकाश आप ही अपना प्रकाश) और आत्मशरण (स्वावलम्बी) होकर विहार करो किसी दूसरे के भरोसे मत रहो।

१७ 'य अकुसल त अभिनिवज्जेय्यामि,
य अकुसलं त समादाय वत्तेय्यामि
इद खो तात, त अरियं चक्कवत्तिवत।

—३।३।१

१८ अधनान धने अननुप्पदीयमाने दालिद्दिय वेपुल्लमगमासि,
दालिद्दिये वेपुल्ल गते अदिन्नादान वेपुल्लमगमासि।

—३।३।४

१९ धम्मो व सेट्ठो जनेतस्मि दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्पराये च।

—३।४।२

२० पाणातिपातो अदिन्नादान मुसावादो च वुच्चति।
परदारगमन चेव नप्पसंसन्ति पण्डिता॥

—३।८।१

२१ छन्दागति गच्छन्तो पापकम्म करोति,
दोसागति गच्छन्तो पापकम्म करोति,
मोहागति गच्छन्तो पापकम्म करोति,
भयागति गच्छन्तो पापकम्म करोति।

—३।८।२

२२ छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति।
आपूरति यसो तस्स, सुक्कपक्खे व चन्दिमा॥

—३।८।२

२३ सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठानानुयोगो भोगान अपायमुख,
पापमित्तानुयोगो भोगान अपायमुख,
आलस्यानुयोगो भोगान अपायमुखं।

—३।८।२

२४ सन्दिट्ठिका धनजानि, कलहप्पवड्ढनी रोगान आयतन
अकित्तिसञ्जननी कोपीननिदंसनी पञ्ञाय दुब्बलिकरणी।

—३।८।२

२५ सो च मच्चेसु जातेसु सहायो होति सो सखा।

—३।८।२

…ा बुराई है उसका त्याग करो और जो भलाई है उसको स्वीकार कर पालन करो — तात यही आर्य (श्रेष्ठ) चक्रवर्ती व्रत है।

१८ निधना को धन न दिये जाने से दरिद्रता बहुत बढ़ गई और दरिद्रता के बहुत बढ़ जाने से चोरी बहुत बढ़ गई।

१९ धम ही मनुष्यों में श्रेष्ठ है इस जन्म में भी परजन्म में भी।

…० जीवहिंसा चोरी झूठ और परस्त्रीगमन—ये कलुषित कर्म हैं। इन कर्मों की पण्डितजन प्रशंसा नहीं करते।

मनुष्य राग के वश होकर पापकर्म करता है द्वेष के वश होकर पापकर्म करता है मोह के वश होकर पापकर्म करता है भय के वश होकर पापकर्म करता है।

…ो छन्द (राग) द्वेष, भय और मोह से धर्म का अतिक्रमण नहीं …रता उसका यश शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति निरन्तर बढ़ता …ता है।

…ा आदि प्रमाद स्थानों का सेवन ऐश्वर्य के विनाश का कारण है। … मित्रों का संग ऐश्वर्य के विनाश का कारण है। आलस्य में पड़े रहना …र्य के विनाश का कारण है।

… तत्काल धन की हानि करती है कलह को बढ़ाती है रोगों का … अपयश पैदा करने वाली है लज्जा का नाश करने वाली है …द्धि को दुर्बल बनाती है।

…म पड़ने पर समय पर सहायक होता है वही सच्चा मित्र है।

२६ उस्सूरसेय्या परदारसेवा
वेरप्पसवो च अनत्थता च ।
पापा च मित्ता सुकदरियता च
एते छ ठाना पुरिस धसयन्ति ॥
—३।८।२

२७ निहीनसेवी न च वुद्धसेवी,
निहीयते कालपक्खे व चन्दो ।
—३।८।२

२८ न दिवा सोप्पसीलेन, रत्तिमुट्ठानदेस्सिना ।
निच्च मत्तेन सोण्डेन सक्का आवसितु घर ।
—३।८।२

२९ अतिसीत अतिउण्ह, अतिसायमिद अहु ।
इति विस्सट्ठकम्मन्ते अत्था अच्चेन्ति माणवे ॥
—३।८।२

३० योध सीत च उण्ह च तिणा भिय्यो न मञ्ञति ।
कर पुरिसकिच्चानि, सो सुख न विहायति ॥
—३।८।२

३१ सम्मुखास्स वण्ण भासति ।
परम्मुखास्स अवण्ण भासति ।
—३।८।३

३२ उपकारको मित्तो सुहदो वेदितब्बो
समानसुखदुक्खो सुहदो वेदितब्बो ।
—३।८।४

३३ पण्डिता सीलसम्पन्नो जल अग्गी व भासति ।
—३।८।४

३४ भोग सहरमानस्स भमरस्स इरीयतो ।
भोगा सनिचय यन्ति वम्मिकोवुपचीयति ।
—३।८।४

२६ अतिनिन्दा, परस्त्रीगमन, लड़ना झगड़ना अनर्थ करना बुरे लोगों की मित्रता और अति कृपणता—ये छह दोष मनुष्य को बर्बाद करने वाले हैं।

२७ जो नीच पुरुषों के संग रहते हैं ज्ञानी जनों का सत्संग नहीं करते वे कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा के समान निरन्तर हीन (क्षीण) होते जाते हैं।

२८ जो दिन में सोता रहता है रात में उठने से घबराता है और हमेशा नशे में धुत रहता है, वह घरगृहस्थी नहीं चला सकता।

२९ आज बहुत सर्दी है आज बहुत गर्मी है अब तो बहुत सन्ध्या (देर) हो गई—इस प्रकार कर्तव्य से दूर भागता हुआ मनुष्य धनहीन दरिद्र हो जाता है।

३० जो व्यक्ति काम करते समय सर्दी-गर्मी को तिनके से अधिक महत्त्व नहीं देता वह कभी सुख से वंचित नहीं होता।

३१ दुष्ट मित्र सामने प्रशंसा करता है, पीठ पीछे निन्दा करता है।

३२ उपकार करने वाला मित्र सुहृद होता है सुख दुःख में समान भाव से साथ रहने वाला मित्र सुहृद होता है।

३३ सदाचारी पंडित प्रज्वलित अग्नि की भांति प्रकाशमान होता है।

३४ जैसे कि मधु जुटाने वाली मधुमक्खी का छत्ता बढ़ता है जैसे कि वल्मीक बढ़ता है वैसे ही धर्मानुसार कमाने वाले का ऐश्वर्य बढ़ता है।

३५ एकेन भोगे भुञ्जेय्य द्वीहि कम्मं पयोजये।
चतुत्थं च निधापेय्य आपदासु भविस्सति॥

—३।८।४

३६ माता पिता दिसा पुब्बा, आचरिया दक्खिणा दिसा।
पुत्तदारा दिसा पच्छा मित्तामच्चा च उत्तरा॥
दासकम्मकरा हेट्ठा उद्धं समणब्राह्मणा।
एता दिसा नमस्सेय्य अलमत्तो कुले गिही॥

—३।८।५

३८ पण्डितो सील सम्पन्नो सण्हो च पटिभानवा।
निवातवुत्ति अत्थद्धो तादिसो लभते यसं॥

—३।८।५

३९ उट्ठानको अनलसो आपदासु न वेधति।
अच्छिन्नवुत्ति मेधावी तादिसो लभते यसं॥

—३।८।५

४० यथा दिवा तथा रत्तिं यथा रत्तिं तथा दिवा।

—३।१०।३

१५. सद्गृहस्थ प्राप्त धन के एक भाग का स्वयं उपभोग करे, दो भागों को व्यापार आदि कार्यक्षेत्र में लगाए और चौथे भाग को आपत्तिकाल में काम आने के लिए सुरक्षित रख छोड़े।

१६. माता-पिता पूर्व दिशा हैं, आचार्य (शिक्षक) दक्षिण दिशा हैं, स्त्री-पुत्र पश्चिम दिशा हैं, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा हैं—
दास और कमकर=नौकर अधोदिशा (नीचे की दिशा) हैं, श्रमण-ब्राह्मण ऊर्ध्व दिशा—ऊपर की दिशा हैं। गृहस्थ को अपने कुल में इन छहों दिशाओं को अच्छी तरह नमस्कार करना चाहिए, अर्थात् इनकी यथायोग्य सेवा करना चाहिए।[1]

१७. पण्डित सदाचारपरायण स्नेही प्रतिभावान एकान्तसेवी—आत्मसंयमी विनम्र पुरुष ही यश को पाता है।

१८. उद्योगी, निरालस, आपत्ति में न डिगनेवाला, निरन्तर काम करनेवाला मेधावी पुरुष यश को पाता है।

१९. साधक के लिए जैसा दिन वैसी रात, जैसी रात वैसा दिन।

१—राजगृहनिवासी श्रेष्ठी पुत्र शृगाल पिता के अन्तिम कथनानुसार छहों दिशाओं को नमस्कार करता था, किन्तु वह छह दिशा के वास्तविक मर्म को नहीं जान पा रहा था। तथागत बुद्ध ने 'छह दिशा' की यह वास्तविक व्याख्या उसे बताई।

सुत्तपिटक

मज्झिमनिकाय की सूक्तियां

●

१ भिक्षुओ ! शील-सपन्न होकर विचरो ।

२ काले (बुरे) कर्म करने वाला मूढ चाहे तीर्थों में कितनी ही डुबकियाँ लगाए किन्तु वह शुद्ध नही हो सकता ।

३ शुद्ध मनुष्य के लिए सदा ही फल्गु (गया के निकट पवित्र नदी) है सदा ही उपोसथ (व्रत का दिन) है । शुद्ध और शुचिकर्मा के व्रत सदा ही सम्पन्न (पूर्ण) होते रहते हैं ।

४ जो स्वय गिरा हुआ है वह दूसरे गिरे हुए को उठाएगा, यह सम्भव नही है ।
जो स्वय गिरा हुआ नही है वही दूसरे गिरे हुए को उठाएगा यह सभव है ।

५. आयुष्मन् ! पाप (अकुशल) का मूल क्या है ?
लोभ पाप का मूल है, द्वेष पाप का मूल है ।
और मोह पाप का मूल है ।

६ भिक्खवे, मूलूपमो मया धम्मो देसितो
नित्थरणत्थाय, नो गहणत्थाय ॥

—१।२२।४

७ राग दोस परेतहि नायं धम्मो सुसम्बुधो ।

—१।२६।३

८ भिक्खव, नयिदं ब्रह्मचरियं लाभ सक्कार सिलोकानिसंसं ।

—१।२९।५

९ न ताव भिक्खवे, भिक्खुनो इधे कच्चे आसीनवा सन्दिस्सन्ति,
याव न अत्तञ्ञमापन्ना होन्ति यसप्पत्ता ।

—१।४७।१

१० विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे ।

—२।३।५

११ य करोति तेन उपपज्जति ।

—२।७।२

१२ यस्स कस्सचि सम्पजानमुसावादे नत्थि लज्जा,
नाह तस्स किञ्चि पाप अकरणीय ति वदामि ।

—२।११।३

१३ पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा कायेन कम्मं कातब्बं ।
पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा वाचाय कम्मं कातब्बं ।
पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा मनसा कम्मं कातब्बं ।

—२।११।३

१४ न मीयमान धनमन्वेति किञ्चि,
पुत्ता च दारा च धन च रट्ठं ।

—२।३२।४

१५ न दीघमायु लभते धनेन,
न चा पि वित्तेन जर विहन्ति ।

—२।३२।४

१६ तस्मा हि पञ्ञा व धनेन सेय्यो,
याय वोसानमिधाधिगच्छति ।

—२।३२।४

६ भिक्षुओ ! मैंने बेड़े की भांति निस्तरण (पार जाने) के लिए तुम्हें धर्म का उपदेश किया है पकड रखने के लिए नहीं।

७ जो व्यक्ति राग और द्वेष मे प्रलिप्त है, उन को धर्म का ज्ञान लेना सुकर नहीं है।

८ भिक्षुओ ! यह ब्रह्मचर्य (श्रामण्य) लाभ, सत्कार एवं यश पाने के लिए नहीं है।

९ भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु को ख्याति एवं यश प्राप्त नहीं होता है, तब तक उसको कोई भी दोष नहीं होता।

१० जो विद्या और चरण से सम्पन्न है वह सब देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

११ प्राणी जो कर्म करता है वह अगले जन्म में उसके साथ रहता है।

१२ जिसे जान बूझ कर झूठ बोलने में लज्जा नहीं है उसके लिए कोई भी पाप कर्म अकरणीय नहीं है ऐसा मैं मानता हूँ।

१३ अच्छी तरह देख-परख कर काया से कर्म करना चाहिए।
अच्छी तरह देख परख कर वचन से कर्म करना चाहिए।
अच्छी तरह देख-परख कर मन से कर्म करना चाहिए।

१४ मरने वाले के पीछे पुत्र स्त्री धन और राज्य कुछ भी नहीं जाता है।

१५ धन से कोई लम्बी आयु नहीं पा सकता है और न धन से जरा का ही नाश किया जा सकता है।

१६ धन से प्रज्ञा ही श्रेष्ठ है जिससे कि तत्त्व का निश्चय होता है।

२६ एकस्स चरितं सेय्यो, नत्थि बाले सहायता।

—३।२८।

२७ अतीतं नान्वागमेय्य नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं अप्पत्तं च अनागतं॥

—३।३१।

२८ अज्जेव किच्चमातप्पं को जञ्ञा मरणं सुवे।

—३।३१।

२९ अतरमानो व भासेय्य नो तरमानो।

—३।३६।

३० तरमानस्स भासतो कायो पि किलमति,
चित्तं पि उपहञ्ञति सरो पि उपहञ्ञति
कण्ठो पि आतुरीयति अविसट्ठं पि होति,
अविञ्ञेय्यं तरमानस्स भासितं।

—३।३६।

३१ एसो हि, भिक्खु परमो अरियो उपसमो,
यदिदं राग-दोस मोहानं उपसमो।

—३।४०।

३२ मुनि खो पन भिक्खु, सन्तो न जायति,
न जीयति, न मीयति।

—३।४०।२

३३ कम्मं विज्जा च धम्मो च, सील जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥

—३।४३।

३४ यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं।

—३।४७।

सुत्तपिटक

संयुत्तनिकाय की सूक्तियां[1]

●

१ उपनीयति जीवितमप्पमायु
जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो
पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानि॥

—१

२ अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो।
वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो,
पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानि॥

—१।

३ येसं धम्मा असम्मुट्ठा परवादेसु न नीयरे।
ते सम्बुद्धा सम्मदञ्ञा, चरन्ति विसमे समं॥

—१।१

४ अतीतं नानुसोचन्ति नप्पजप्पन्ति नागतं।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति तेन वण्णो पसीदति॥

—१।१।१

१ भिक्षु जगदीश काश्यप सम्पादित नवनालन्दा संस्करण।

सुत्तपिटक

संयुत्तनिकाय की सूक्तियां

●

१ जीवन बीत रहा है आयु बहुत थोड़ा है बुढ़ापे से बचने का कोई उपाय नहीं है। मृत्यु के इस भय को देखते हुए सुख देने वाले पुण्य कर्म कर लेने चाहिए।

२ समय गुजर रहा है रातें बीत रही हैं जिन्दगी के जमाने एक पर एक निकल रहे हैं मृत्यु के इस भय को देखते हुए सुख देने वाले पुण्य कर्म कर लेने चाहिए।

३ जिन्होंने धर्मों को ठीक तरह जान लिया है जो हर किसी मत पक्ष में बहकते नहीं हैं वे सम्बुद्ध हैं सब कुछ जानते हैं विषम स्थिति में भी उनका आचरण सम रहता है।

४ बीते हुए का शोक नहीं करते आने वाले भविष्य के मनसूबे नहीं बांधते जो मौजूद है उसी से गुजारा करते हैं इसी से साधकों का चेहरा खिला रहता है।

५ अनागतप्पजप्पाय, अतीतस्सानुसोचना।
एतेन बाला सुस्संति, नलो व हरितो लुतो ॥

—१।१।१०

६ नत्थि पुत्तसमं पेमं, नत्थि गोसमितं धनं।
नत्थि सुरियसमा आभा, समुद्दपरमा सरा ॥
नत्थि अत्तसमं पेमं, नत्थि धञ्ञसमं धनं।
नत्थि पञ्ञा समा आभा, वुट्ठि वे परमा सरा ॥

—१।१।१३

७ सुस्सूसा सेट्ठा भरियानं, यो च पुत्तानमस्सवो।

—१।१।१४

८ कतिहं चरेय्य सामञ्ञं, चित्तं चे न निवारये।
पदे पदे विसीदेय्य, सङ्कप्पानं वसानुगो ॥

—१।१।१७

९ न ख्वाहं, आवुसो, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावामि।

—१।१।२०

१० सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको, एहिपस्सिको।
ओपनयिको, पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि ॥

—१।१।२०

११ छन्नो कालो न दिस्सति।

—१।१।२०

१२ नापुमं तं पुसति, पुसन्तं च ततो पुसं।

—१।१।२१

१३ यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति
सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।
तमेव बालं पच्चेति पापं,
सुखुमो रजो पटिवातं व खित्तो ॥

—१।१।२२

१४ यतो यतो मनो निवारये,
न दुक्खमेति नं ततो ततो ।
स सब्बतो मनो निवारये
स सब्बतो दुक्खा पमुच्चति ॥

—१।१।२४

१५ न सब्बतो मनो निवारये,
न मनो संयतत्तमागतं ।
यतो यतो च पापकं
ततो ततो मनो निवारये ॥

—१।१।२४

१६ पहीनमानस्स न सन्ति गन्था ।

—१।१।२५

१७ सब्भिरेव समासेथ सब्भि कुब्बेथ सन्थवं ।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय पञ्ञा लब्भति नाञ्ञतो ॥

—१।१।३१

१८ मच्छेरा च पमादा च एवं दानं न दीयति ।

—१।१।३२

१९ ते मतेसु न मीयन्ति, पन्थानं व सहब्बजं ।
अप्पस्मिं ये पवेच्छन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ॥

—१।१।३२

२० अप्पस्मा दक्खिणा दिन्ना सहस्सेन समं मिता ।

—१।१।३२

१३ जो शुद्ध, निष्पाप, निर्दोष व्यक्ति पर दोष लगाता है उसी अज्ञानी जीव पर वह सब पाप पलटकर वैसे ही आ जाता है जैसे कि सामने की हवा में फेंकी गयी सूक्ष्म धूल।

देवता ने कहा—
१४ जो व्यक्ति जहाँ जहाँ से मन को हटा लेता है वहाँ वहाँ से फिर उसको दुःख नहीं होता। जो सभी जगह से मन को हटा लेता है वह सभी जगह दुःख से छूट जाता है।

१५ तथागत बुद्ध ने उत्तर दिया—
सभी जगह से मन को हटाना आवश्यक नहीं है यदि मन अपने नियन्त्रण में आ गया है तो। जहाँ जहाँ भी पाप है बस वहाँ वहाँ से ही मन को हटाना है।

१६ जिनका अभिमान प्रहीण हो गया है उन्हें कोई गाँठ नहीं रहती।

१७ सत्पुरुषों के ही साथ बैठे सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले, सत्पुरुषों के अच्छे धर्मों (कर्तव्यों) को जानने से ही प्रज्ञा (सम्यग् ज्ञान) प्राप्त होती है अन्यथा नहीं।

१८ मात्सर्य और प्रमाद से दान नहीं देना चाहिए।

१९. वे मरने पर भी नहीं मरते हैं जो एक पथ से चलते हुए सहयात्रियों की तरह थोड़ी से थोड़ी चीज को भी आपस में बाँट कर खाते हैं। यह पारस्परिक सहयोग ही सनातन धर्म है।

२० थोड़े में से भी जो दान दिया जाता है वह हजारों-लाखों के दान की बराबरी करता है।

२१ सद्धा हि दानं बहुधा पसत्थं
दाना च खो धम्मपदं व सेय्यो ।

—१।१।३३

२२ छन्दज अघं छन्दज दुक्खं
छन्दविनया अघविनयो अघविनया दुक्खविनयो ।

—१।१।३४

२३ न ते कामा यानि चित्रानि लोके
सङ्कप्परागो पुरिसस्स कामो ।

—१।१।३४

२४ अच्चय देसयन्तीनं, यो चे न पटिगण्हति ।
कोपन्तरो दोसगरु, स वेरं पटिमुञ्चति ॥

—१।१।३५

२५ हीनत्थरूपा न पारगमा ते ।

—१।१।३८

२६ अन्नदो बलदो होति वत्थदो होति वण्णदो ।

—१।१।४२

२७ सो च सब्बददो होति यो ददाति उपस्सयं ।
अमतंददो च सो होति यो धम्ममनुसासति ॥

—१।१।४२

२८ अथ को नाम सो यक्खो यं अन्नं नाभिनन्दति ।

—१।१।४३

२९ पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं ।

—१।१।४३

३० किंसु याव जरा साधु, किंसु साधु पतिट्ठितं ?
किंसु नरानं रतनं किंसु चोरेहि दूहरं ?
सीलं याव जरा साधु सद्धा साधु पतिट्ठिता ।
पञ्ञा नरानं रतनं पुञ्ञं चोरेहि दूहरं ॥

—१।१।५१

२१ श्रद्धा से दिये जाने वाले दान की बड़ी महिमा है।
दान से भी बढ़कर धर्म के स्वरूप को जानना है।

२२ इच्छा बढ़ने से पाप होते हैं इच्छा बढ़ने से दुख होते हैं।
इच्छा का दूर करने से पाप दूर हो जाता है पाप दूर होने से दुख दूर हो जाते हैं।

२३ ससार के सुन्दर पदार्थ काम नहा हैं मन म राग का हो जाना ही वस्तुत काम है।

२४ अपना अपराध स्वीकार करने वालो का जो क्षमा नहीं करता है वह भीतर ही भीतर क्रोध रखने वाला महा द्वेषी, वर को और अधिक बाँध लेता है।

२५ हीन (क्षुद्र) लक्ष्य वाले पार नहीं जा सकते।

२६ अन्न देने वाला बल देता है वस्त्र देने वाला वर्ण (रूप) देता है।

२७ वह सब कुछ देने वाला होता है जो उपाश्रय (स्थान गृह) देता है और जो धम का उपदेश करता है वह अमृत देने वाला होता है।

२८ भला एसा कौन सा प्राणी है जिसे अन्न प्यारा न लगता हो?

२९ परलोक म केवल पुण्य ही प्राणियो का आधार (सहारा) होता है।

देवता —

३० कौन सी चीज ऐसी है जो बुढ़ापे तक ठीक है? स्थिरता पाने के लिए क्या ठीक है? मनुष्यो का रत्न क्या है? चोरो से क्या नहीं चुराया जा सकता?

बुद्ध —

शील (सदाचार) बुढ़ापे तक ठीक है स्थिरता के लिए श्रद्धा ठीक है प्रज्ञा मनुष्यो का रत्न है पुण्य चोरो से नहा चुराया जा सकता।

३१ हथियार राहगीर का मित्र है माता अपने घर का मित्र है अपने किए पुण्य कर्म ही परलोक के मित्र हैं।

३२ पुत्र मनुष्यों का आधार है भार्या (पत्नी) सब से बड़ा मित्र है।

३३ तृष्णा मनुष्य को पदा करती है।

३४ तप और ब्रह्मचर्य बिना पानी का स्नान है।

३५ श्रद्धा पुरुष का साथी है प्रज्ञा उस पर नियंत्रण करती है।

३६ चित्त से ही विश्व नियंत्रित होता है।

३७ तृष्णा के नष्ट हो जाने पर सब बन्धन स्वयं ही कट जाते हैं।

३८ संसार मृत्यु से पीड़ित है जरा से घिरा हुआ है।

३९ राजा राष्ट्र का प्रज्ञान (पहचान—चिन्ह) है पत्नी पति का प्रज्ञान है।

४० ऊपर उठने वालों में विद्या सबसे श्रेष्ठ है गिरने वालों में अविद्या सबसे बड़ी है।

४१ लोभ धर्मकार्य का बाधक है।

४२ आलस्य प्रमाद उत्साहहीनता असंयम निद्रा और तन्द्रा—ये छह जीवन के छिद्र हैं इन्हें सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

४३ अत्तानं न द पाणो मामा न परिच्चजे ।
—१।१।३८

४४ वुद्धिं गतनं मनलगं न माता पुत्त य पोसति ।
—१।१।४०

४५ पत्तिच्चो हि ब्राह्मणो ।
—१।२।१

४६ अरियान समो मग्गो अरिया हि निममे ममा ।
—१।२।१

४७ वधिरा वे वधिरायता, दन्तुमेनं परक्कमे ।
मिथिला हि परिच्चजो, भिय्या मारियत रज॥
—१।२।

४८ अकत दुक्कटं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कटं ।
कत च सुकत सय्यो, य कत्वा नानुतप्पति ॥
—१।२।८

४९ कुसो यथा दुग्गहितो हत्थमेवानुकंतति ।
—१।२।८

५० सत च धम्मो न जर उपेति ।
—१।३।१

५१ अत्तान चे पिय जञ्ञा, न न पापेन सयुजे ।
—१।३।४

५२ उभो पुञ्ञ च पाप च यं मच्चो कुरत इध ।
त हि तस्स सक होति तं व आदाय गच्छति ॥
—१।३।४

५३ हन्ता लभति हन्तारं जेतार लभते जय ।
—१।३।१५

५४ इत्थी पि हि एकच्चिया, सेय्या पोम जनाधिप ।
—१।३।१६

४३ साधक अपने को न दे डाले अपने को न छोड़ दे।

४४ वृष्टि आलसी और उद्योगी–दोनों का ही पोषण करती है माता जैसे पुत्र का।

४५ कृतकृत्य (जो अपने कर्तव्य को पूरा कर चुका हो) ही ब्राह्मण होता है।

४६ आर्यों के लिए सभी मार्ग सम हैं, आर्य विषम स्थिति मे भी सम रहते हैं।

४७ यदि कोई कार्य करने जसा है तो उसे दृढ़ता के साथ कर लेना चाहिए। जो साधक अपने उद्देश्य म शिथिल है वह अपने ऊपर और भी अधिक मल चढ़ा लेता है।

४८ बुरी तरह करने से न करना अच्छा है बुरी तरह करने से पछताना पड़ता है। जो करने जसा हो उसे अच्छी तरह करना ही अच्छा है अच्छी तरह करने पर पीछे पछतावा नहीं होता।

४९ अच्छी तरह न पकड़ा हुआ कुश हाथ को ही काट डालता है।

५० सत्पुरुषों का धर्म कभी पुराना नहीं होता।

५१ जिस को अपनी आत्मा प्रिय है, वह अपने को पाप म न लगाए।

५२ मनुष्य यहाँ जो भी पाप और पुण्य करता है वही उसका अपना होता है। उसे ही लेकर परलोक म जाता है।

५३ मारने वाले को मारने वाला मिलता है जीतने वाले को जीतने वाला।

५४ हे राजन्! कुछ स्त्रियाँ पुरुषों से भी बढ़कर होती हैं।

५५ चित्तम्हि वसीभूतम्हि इद्धिपादा सुभाविता ।

—१।५।१

५६ फलं वे कदलिं हन्ति, फलं वेलुं, फलं नलं ।
सक्कारो कापुरिसं हन्ति, गब्भो अस्सतरिं यथा ।

—१।६।१२

५७ जयं चेवस्स तं होति, या तितिक्खा विजानतो ।

—१।७।३

५८ मा जातिं पुच्छ, चरणं च पुच्छ । कट्ठा हवे जायति जातवेदो ।

—१।७।६

५९. नेसा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो
सन्तो न ते ये न वदन्ति धम्मं ।
रागं च दोसं च पहाय मोहं
धम्मं वदन्ता च भवन्ति सन्तो ।

१।७।२२

६० धम्मं भणे, नाधम्मं,
पियं भणे, नापियं
सच्चं भणे नालिकं ।

—१।८।५

६१ भिय्यो बाला पभिज्जेय्यु, नो चस्स पटिसेधको ।

—१।११।४

६२ यो हवे बलवा सन्तो दुब्बलस्स तितिक्खति ।
तमाहु परमं खन्तिं निच्चं खमति दुब्बलो ।।

—१।११।४

६३ अबलं तं बलं आहु यस्स बालबलं बलं ।

—१।११।४

६४ यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फलं ।

—१।११।१०

५५ चित्त के वशीभूत हो जाने पर ऋद्धियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं।

५६ जिस प्रकार केले का फल केले को, बांस का फल बांस को और नरकट का फल नरकट को, खच्चरी का अपना ही गर्भ खच्चरी को नष्ट कर देता है उसी प्रकार सत्कार सम्मान कापुरुष (क्षुद्र व्यक्ति) को नष्ट कर देता है।

५७ आखिर विजय उसीकी होती है जो दुर्वचन सहन करना जानता है।

५८ जाति मत पूछो कर्म पूछो। लकड़ी से भी आग पैदा हो जाती है।

५९ वह सभा सभा नहीं जहाँ संत नहीं और वे संत संत नहीं जो धर्म की बात नहीं कहते। राग द्वेष और मोह को छोड़कर धर्म का उपदेश करने वाले ही संत होते हैं।

६० धर्म कहना चाहिए अधर्म नहीं।
प्रिय कहना चाहिए अप्रिय नहीं।
सत्य कहना चाहिए असत्य नहीं।

६१ मूर्ख अधिकाधिक भूलों की ओर बढ़ते ही जाते हैं यदि उन्हें कोई रोकने वाला नहीं होता है तो।

६२ जो स्वयं बलवान् होकर भी दुर्बल की बातें सहता है उसी को सर्वश्रेष्ठ क्षमा कहते हैं।

६३ वह बली निर्बल कहा जाता है जिसका बल मूर्खों का बल है।

६४ जैसा बीज बोता है वैसा ही फल पाता है।

६४ भिक्षुओ ! दो प्रकार के मूर्ख होते हैं—एक वह जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखता है और दूसरा वह जो दूसरे के अपराध स्वीकार कर लेने पर भी क्षमा नहीं करता है।

६६ भिक्षुओ ! सुख का हेतु क्या है ? शान्ति (समाधि) है
भिक्षुओ ! शान्ति का हेतु क्या है ? प्रीति है।

६७ जो तृष्णा को बढ़ाते हैं वे उपाधि को बढ़ाते हैं। जो उपाधि को बढ़ाते हैं वे दुःख को बढ़ाते हैं।

६८ संसार में तृष्णा जैसा राग का बंधन अन्यत्र नहीं दिखा जाता है।

६९ कल्याणमित्र महात्माओं के साथ, निश्चल चित्तवालों के साथ, पूर्ण गुणों के साथ और निश्चय आत्मवादी, निश्चय आत्मविदों के साथ उन्होंने ये ही मेल जोल रखे हैं।

७० जो अनित्य है वह दुःख है, जो दुःख है वह अनात्मा है और जो अनात्मा है—वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है।

७१ सुख-स्पर्श से मतवाला न बने, और दुःख-स्पर्श से कांपने न लगे।

७२ यह सारा गृह बन्धन अर्थात् संसार मन पर ही टिका है।

७३ ज्ञानी साधक को देखने में देखना भर होगा, सुनने में सुनना भर होगा, जानने में जानना भर होगा अर्थात् वह रूपादि का ज्ञाता द्रष्टा होगा, उनमें रागासक्त नहीं।

सूनि

७४ न सो रज्जति रूपेसु रूप त्त्विा पटिस्सतो ।
विरत्तचित्तो वेदेति त च नाज्भोस तिट्ठति ॥
यथास्स पस्सतो रूप, सेवतो चापि वेदन ।
खीयति नोपचीयति एव सो चरती सतो ॥

—४।३५

७५ पमुदितस्स पीति जायति
पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति
पस्सद्धकायो सुख विहरति ।

—४।३५।६७

७६ सुखिनो चित्त समाधीयति
समाहिते चित्त धम्मा पातुभवन्ति ।

—४।३३।६७

७७ य भिक्खवे न तुम्हाक त पजहथ ।
त वो पहीन हिताय सुखाय भविस्सति ॥

—४।२।३।१०।

७८ न चक्खु रूपान सयोजन न रूपा चक्खुस्स सयोजन ।
य च तत्थ तदुभय पटिच्च उप्पज्जति छ दरागो त तत्थ सयोजन ।

—४।३५।२३२

७९ सद्धाय खो गहपति, ञाण यव पणीततर ।

८० यो खो भिक्खु

४।४१।८

रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो इद वुच्चति अमतं ।

८१ जराधम्मा योब्बञ्ञ, व्याधिधम्मो आरोग्ये

५।४५।७

मरण धम्मो जीवित ।

५।४८।४१

(A)

सुत्तपिटक

अंगुत्तरनिकाय की सूक्तिया

●

१ चित्त भिक्खवे रक्खित महतो अत्थाय संवत्तति ।

—१।४।६

२ कोसज्ज भिक्खवे महतो अनत्थाय संवत्तति ।

—१।१०।१

३ विरियारम्भो, भिक्खवे महतो अत्थाय संवत्तति ।

—१।१०।४

४ मिच्छादिट्ठिकस्स भिक्खवे
द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरा पाटिकङ्खा निरयो वा तिरच्छानयोनि वा ।

—२।३।७

५ सम्मादिट्ठिकस्स भिक्खवे
द्विन्न गतीनं अञ्ञतरा गति पाटिकङ्खा—
देवा वा मनुस्सा वा ।

—२।३।८

६ द्वे मानि भिक्खवे सुखानि ।
कतमानि द्वे ?
कायिकं च सुखं, चेतसिकं च सुखं ।
एतदग्गं भिक्खवे इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं चेतसिकं सुखं ।

—२।७।९

भि । अङ्गुत्तर का पृष्ठ नालन्दा संस्करण ।

सुत्तपिटक

अगुत्तरनिकाय की सूक्तिया

●

१ भिक्षुओ ! सुरक्षित चित्त महान् अर्थ=लाभ के लिए होता है ।

२ भिक्षुओ ! आलस्य बडे भारी अनर्थ (हानि) के लिए होता है ।

३ भिक्षुओ ! वीर्यारम्भ (उद्योगशीलता) महान् अर्थ की सिद्धि के लिए होता है ।

४ भिक्षुओ ! मिथ्यादृष्टि की इन दो गतियो मे से कोई भी एक गति [illegible] है—नरक अथवा तिर्यच ।

५ भिक्षुओ ! सम्यग दृष्टि आत्मा की इन दो गतियो मे से [illegible] गति होती है देव अथवा मनुष्य ।

६ भिक्षुओ ! दो सुख हैं ।
कौन से दो ?
कायिक सुख और मानसिक सुख ।
भिक्षुओ ! इन दो सुखो मे मानसिक [illegible]

७ द्वेमा भिक्खवे आसा दुप्पजहा।
कतमा द्वे?
लाभासा च जीवितासा च।

—२।१।१

८ द्वेमे भिक्खवे पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं।
कतमे द्वे?
यो च पुब्बकारी यो च कतञ्ञू कतवेदी।

—२।१।२

९ द्वेमे भिक्खवे, पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं।
कतमे द्वे?
तित्तो च तप्पेता च।

—२।१।३

१० द्वेमानि, भिक्खवे, दानानि।
कतमानि द्वे?
आमिसदानं च धम्मदानं च।
एतदग्गं भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं दानानं यदिदं धम्मदानं।

—२।१।४

११ तीहि भिक्खवे धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो।
कतमेहि तीहि?
कायदुच्चरितेन वचीदुच्चरितेन मनोदुच्चरितेन।

—३।१।२

१२ निहीयति पुरिसो निहीनसेवी,
न च हायेथ कदाचि तुल्यसेवी।
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं,
तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथ॥

—३।३।५

१३ नत्थि लोके रहो नाम पापकम्मं पकुब्बतो।
अत्ता ते पुरिस जानाति, सच्चं वा यदि वा मुसा॥

३।४।१०

७ भिक्षुओ ! दो आशाएं (इच्छाएं) बड़ी कठिनता से छूटती हैं ।
कौन सी दो ?
लाभ की आशा और जीवन की आशा ।

८ भिक्षुओ ! संसार में दो व्यक्ति दुर्लभ हैं ।
कौन से दो ?
एक वह जो पहले उपकार करता है, दूसरा वह कृतज्ञ जो किए हुए उपकार को मानता है ।

९ भिक्षुओ ! संसार में दो व्यक्ति दुर्लभ हैं ।
कौन से दो ?
एक वह जो स्वयं तृप्त है=सन्तुष्ट है और दूसरा वह जो दूसरों को तृप्त=सन्तुष्ट करता है ।

१० भिक्षुओ ! दो दान हैं ।
कौन से दो ?
भोगों का दान और धर्म का दान ।
भिक्षुओ ! उक्त दोनों दानों में धर्म का दान (धर्मोपदेश) ही श्रेष्ठ है ।

११ भिक्षुओ ! तीन धर्मों (कर्मों) से व्यक्ति को बाल (अज्ञानी) समझना चाहिए ।
कौन से तीन ?
काय के बुरे आचरण से, वचन के बुरे आचरण से और मन के बुरे आचरण से ।

१२ अपने से शील और प्रज्ञा से हीन व्यक्ति के संग से मनुष्य हीन हो जाता है, बराबर वाले के संग से हीन नहीं होता है, ज्यों का त्यों रहता है । अपने से श्रेष्ठ के संग से शीघ्र ही मनुष्य का उदय—विकास होता है, अतः सदा श्रेष्ठ पुरुषों का ही संग करना चाहिए ।

१३ हे पुरुष ! तेरी आत्मा तो जानती है कि क्या सत्य है और क्या असत्य है ? अतः पापकर्म करने वाले के लिए एकान्त गुप्त (छुपाव) जैसी कोई स्थिति नहीं है ।

१४ दिन्नं होति सुनीहतं।

—३।६।२

१५ यो खो, वच्छ, परं दानं ददन्तं वारेति
सो तिण्णं अन्तरायकरो होति तिण्णं पारिपन्थिको।
कतमेसं तिण्णं ?
दायकस्स पुञ्ञन्तरायकरो होति, पटिग्गाहकानं लाभन्तरायकरो
होति पुब्बेव खो पनस्स अत्ता खतो च होति उपहतो च।

—३।६।७

१६ धीरो हि अरतिस्सहो।

—४।१।८

१७ गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं।
न च अप्पत्वा लोकन्तं दुक्खा अत्थि पमोचनं॥

—४।५।६

१८ उभो च होन्ति दुस्सीला कदरिया परिभासका।
ते होन्ति जानिपतयो छवा संवासमागता॥

—४।६।३

१९ सब्बा ता जिम्हं गच्छन्ति नेत्ते जिम्हं गते सति।

—४।७।१०

२० सब्बं रट्ठं दुक्खं सेति, राजा चे होति अधम्मिको।
सब्बं रट्ठं सुखं सेति, राजा चे होति धम्मिको।

—४।७।१०

२१ एकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो
परिसापिस्स होति दुस्सीला पापधम्मा।
एवं खो भिक्खवे, पुग्गलो असुरो होति असुरपरिवारो।

—४।१०।१

२२ एकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो
परिसापिस्स होति सीलवती कल्याणधम्मा।
एवं खो भिक्खवे पुग्गलो देवो होति देवपरिवारो।

—४।१०।१

२३ चत्तारिमानि, भिक्खवे, बलानि।
कतमानि चत्तारि ?
पञ्ञाबलं, विरियबलं, अनवज्जबलं संगहबलं।

—४।१६।३

२४ मनापदायी लभते मनापं।

—५।५।४

२५ दलिद्दो इणमादाय, भुञ्जमानो विहञ्ञति।

—६।५।३

२६ दोसस्स पहानाय मेत्ता भावितब्बा।
मोहस्स पहानाय पञ्ञा भावितब्बा॥

—६।११।१

२७ सद्धाधन, सीलधन, हिरी ओत्तप्पियं धनं।
सुतधनं च चागो च पञ्ञा वे सत्तमं धनं॥
यस्स एते धना अत्थि, इत्थिया पुरिसस्स वा।
अदलिद्दोति तं आहु, अमोघं तस्स जीवितं॥

—७।१।५

२८ अदण्डेन असत्थेन, विजेय्य पथविं इमं।

—७।६।६

२९ ञातिमित्ता सुहज्जा च, परिवज्जन्ति कोधनं।

—७।६।११

३० कोधनो दुब्बण्णो होति।

—७।६।११

३१ समिद्धि किं सारा ?
विमुत्तिसारा।

—९।२।४

३२ अनभिरति खो आवुसो, इमस्मिं धम्मविनये दुक्खा
अभिरति सुखा।

—१०।७।६

२३ भिक्षुओ! चार बल हैं?
कौन से चार?
प्रज्ञा का बल, वीर्य—शक्ति का बल, अनवद्य—सदाचार का बल और संग्रह का बल।

२४ मनोनुकूल सुन्दर वस्तु दान में देने वाला मनो ही मनोज्ञ सामग्री प्राप्त करता है।

२५ दरिद्र व्यक्ति यदि ऋण लेकर भोगोपभोग में पड़ जाता है तो वह नष्ट हो जाता है।

२६ द्वेष को दूर करने के लिए मैत्री भावना करनी चाहिए। मोह को दूर करने के लिए प्रज्ञा भावना (अध्यात्म चिन्तन) करनी चाहिए।

२७ श्रद्धा, शील, लज्जा, संकोच, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा—ये सात धन हैं। जिस स्त्री या पुरुष के पास ये धन हैं, वही वास्तव में अदरिद्र (धनी) है, उसीका जीवन सफल है।

२८ बिना किसी दण्ड और शस्त्र के पृथ्वी को जीतना चाहिए।

२९ क्रोधी को ज्ञाति जन, मित्र और सुहृद सभी छोड़ देते हैं।

३० क्रोधी कुरूप हो जाता है।

३१ समृद्धि का सार क्या है?
विमुक्ति (अनासक्ति) ही सार है।

३२ आवुस! है और अभिरति का होना
सुख है।

३३ श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति द्वेष रखना सबसे बडा पाप है।

३४ हे ब्राह्मण मिथ्या दृष्टि इधर का किनारा है सम्यग दृष्टि उधर का किनारा है।
मिथ्या सकल्प इधर का किनारा है सम्यक सकल्प उधर का किनारा है।
मिथ्यावाणी इधर का किनारा है सम्यक वाणी उधर का किनारा है।
मिथ्या कम इधर का किनारा है सम्यक् कम उधर का किनारा है।

३५ भिक्षुओ ! मिथ्याज्ञान अधम है सम्यग ज्ञान धम है।

३६ भिक्षुओ ! मनुष्य मन मे रहता है।

सुत्तपिटक

धम्मपद की सूक्तियां

●

१ मनोपुब्बगमा धम्मा, मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदं ॥ —१।१

२ मनोपुब्बंगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति, छाया व अनपायिनि ॥ —१।२

३ नहि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कुदाचन।
अवेरेण च सम्मन्ती एस धम्मो सनन्तनो। —१।५

४ यथागारं सुच्छन्नं, वुट्ठी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं, रागो न समतिविज्झति ॥ —१।१४

५ पापकारी उभयत्थ सोचति। —१।१५

सुत्तपिटक

धम्मपद की सूक्तिया

०

१ सभी धर्म (वृत्तियाँ) पहले मन में पैदा होते हैं मन ही मुख्य है सब कुछ मनोमय है। यदि कोई व्यक्ति दूषित मन से कुछ बोलता है करता है तो दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि पहिया (चक्र) गाड़ी खींचने वाले बैलों के पैरों का।

२ सभी धर्म (वृत्तियाँ) पहले मन में पैदा होते हैं मन ही मुख्य है सब कुछ मनोमय है। यदि कोई निर्मल मन से कुछ बोलता है या करता है तो सुख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि कभी साथ नहीं छोड़ने वाली छाया मनुष्य का अनुसरण करती है।

३ वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते। अवैर (प्रेम) से ही वैर शान्त होते हैं— यही शाश्वत नियम है।

४ अच्छी तरह छाए हुए मकान में वर्षा का पानी आसानी से प्रवेश नहीं कर पाता ठीक वैसे ही सुभावित (साधे हुए) चित्त में राग का प्रवेश नहीं हो सकता।

५ पाप करने वाला लोक-परलोक दोनों जगह शोक करता है।

६ कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति। —१।१८

७ बहुं पि चे सहितं भासमानो
न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो व गावो गणयं परेसं
न भागवा सामञ्ञस्स होति॥ —१।१९

८ अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदं। —२।१

९ अप्पमादेन मघवा, देवानं सेट्ठतं गतो। —२।१०

१० चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दन्तं सुखावहं। —३।३

११ न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य, कतानि अकतानि च॥ —४।७

१२ सीलगन्धो अनुत्तरो। —४।१२

१३ दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं।
दीघो बालान संसारो सद्धम्मं अविजानतं॥ —५।१

१४ यावजीवम्पि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा॥ —५।५

१५. मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिव्हा सूपरसं यथा॥ —५।६

६ जिसने सत्कर्म (पुण्य) कर लिया है वह दोनों लोक में सुखी होता है।

७ बहुत सी धर्म-संहिताओं का पाठ करने वाला भी यदि उनके अनुसार आचरण नहीं करता है तो वह प्रमादी मनुष्य उनके लाभ को प्राप्त नहीं कर सकता, वह श्रमण नहीं कहला सकता, जैसे कि दूसरों की गायों को गिनने वाला ग्वाला गायों का मालिक नहीं हो सकता।

८ अप्रमाद अमरता का मार्ग है, प्रमाद मृत्यु का।

९ अप्रमाद के कारण ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ माना गया है।

१० चंचल चित्त का दमन करना अच्छा है, दमन किया हुआ चित्त सुखकर होता है।

११ दूसरे की त्रुटियां नहीं देखनी चाहिए, उनके कृत्य अकृत्य के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए। अपनी ही त्रुटियों का तथा कृत्य अकृत्य का विचार करना चाहिए।

१२ शील (सदाचार) की सुगन्ध सबसे उत्तम है।

१३ जागते हुए को रात लम्बी होती है, थके हुए का एक योजन भी बहुत लम्बा होता है, वैसे ही सद्धर्म को नहीं जानने वाले अज्ञानी का संसार बहुत दीर्घ होता है।

१४ मूर्ख व्यक्ति जीवनभर पंडित के साथ रहकर भी धर्म को नहीं जान पाता, जैसे कि कलछी सूप (दाल) के रस को।

१५ विज्ञ पुरुष एक मुहूर्तभर भी पंडित की सेवा में रहे तो वह शीघ्र ही तत्त्व को जान लेता है, जैसे कि जीभ सूप के रस (स्वाद)

१६ न त कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।
—५।

१७ न हि पापं कतं कम्मं, सज्जु खीरं व मुच्चति ।
डहन्तं बालमन्वेति भस्माच्छन्नो व पावको ॥
—५।१२

१८ अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥
६।१०

१९ गामे वा यदि वा रञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले ।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥
—७।६

२० सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता ।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥
—८।१

२१ यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने ।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥
—८।४

२२ अभिवादनसीलिस्स निच्चं वुड्ढापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ॥
—८।१०

२३ यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो वीरियमारभतो दळ्हं ॥
—८।१३

२४ उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स थोकं थोकं पि आचिनं ॥
—९।७

१६ वह काम करना ठीक नहीं जिसे करके पीछे पछताना पडे।

१७ पाप कम ताजा दूध की तरह तुरत ही विकार नहीं लाता वह तो राख से ढकी अग्नि की तरह धीरे धीरे जलते हुए मूढ मनुष्य का पीछा करता रहता है।

१८ मनुष्यो म पार जाने वाले थोडे ही होते हैं अधिकतर लोग किनारे ही किनारे दौडते रहते हैं।

१९ गाव म या जगल म ऊचाई पर या निचाई पर जहा कही पर भी अर्हत् विहार करते हैं वही भूमि रमणीय है।

२० व्यथ के पदो से युक्त हजारों वचनो स सार्थक एक पद ही श्रेष्ठ है जिसे सुनकर शान्ति प्राप्त होती है।

२१ जो सग्राम म हजारो मनुष्यो को जीत लेता है उस स भी उत्तम सग्राम विजयी वह है जो एक अपने (आत्मा) को विजय कर लेता है।

२२ वृद्धो की सेवा करने वाले विनयशील व्यक्ति के ये चार गुण सदा बढते रहते हैं—आयु वण=यश सुख और बल।

२४ आलसी और अनुद्योगी रहकर सौ वर्ष जीने की अपेक्षा दृढ उद्योगी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

२४ जैसे कि पानी की एक-एक बूद से घडा भर जाता है वैसे ही धीर थोडा थोडा करके भी पुण्य का काफी सचय कर

२५ पाणिम्हि चे वणो नास्स, हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो ॥ —९।९

२६ सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥ —१०।३

२७ मा वोच फरुसं किंचि वुत्ता पटिवदेय्यु तं। —१०।५

२८ अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ। —११।१

२९ मरणन्तं हि जीवितं। —११।३

३० अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो व जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति, पञ्ञा तस्स न वड्ढति ॥ —११।७

३१ अत्तानं चे तथा कयिरा, यथाञ्ञमनुसासति। —१२।३

३२ अत्ताहि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया? —१२।४

३३ सुद्धीअसुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये। —१२।९

३४ उत्तिट्ठे न पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥ —१३।२

३५ अन्धभूतो अयं लोको, तनुकेत्थ विपस्सति। —१३।८

३६ न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति। —१३।११

५ यदि हाथ में घाव न हो तो उस हाथ में विष लेने पर भी शरीर में विष का प्रभाव नहीं होता है। इसी प्रकार मन में पाप न रखने वाले को बाहर से कर्म का पाप नहीं लगता।

६ सभी प्राणी सुख चाहते हैं जो अपने सुख की इच्छा से दूसरे प्राणियों की हिंसा करता है उसे न यहां सुख मिलता है न परलोक में।

कठोर वचन मत बोलो ताकि दूसरे भी तुम्हें वैसा न बोलें।

८ अंधकार से घिरे हुए लोग दीपक की तलाश क्यों नहीं करते ?

९ जीवन की सीमा मृत्यु तक है।

० अल्पश्रुत मूढ़ व्यक्ति बैल की तरह बढ़ता है उसका मांस तो बढ़ता है किंतु प्रज्ञा नहीं बढ़ती है।

१ जैसा अनुशासन तुम दूसरों पर करना चाहते हो, वैसा ही अपने ऊपर भी करो।

२ आदमी का अपना आत्मा ही अपना नाथ (स्वामी) है दूसरा कौन उसका नाथ हो सकता है ?

३ शुद्धि और अशुद्धि अपने से ही होती है दूसरा कोई किसी अन्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

१४ उठो ! प्रमाद मत करो, सद्धर्म का आचरण करो। धर्मचारी पुरुष लोक परलोक दोनों जगह सुखी रहता है।

१५ यह संसार बुलबुले के समान हो रहा है यहां देखने वाले बहुत थोड़े हैं।

१६ कृपण मनुष्य कभी स्वर्ग में नहीं जाते।

३७ किच्छो मनुस्सपटिलाभो, किच्छं मच्चान जीवितं।
किच्छं सद्धम्मस्सवनं, किच्छो बुद्धानमुप्पादो॥
—१४।४

३८ सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥
—१४।५

३९ खन्ती परमं तपो तितिक्खा।
—१४।६

४० न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
—१४।८

४१ जयं वेरं पसवति, दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति, हित्वा जयपराजयं॥
—१५।५

४२ नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि।
—१५।६

४३ नत्थि सन्ति परं सुखं।
—१५।६

४४ जिघच्छा परमा रोगा।
—१५।७

४५ आरोग्य परमा लाभा सन्तुट्ठि परमं धनं।
विस्सास परमा ञाती, निब्बानं परमं सुखं॥
—१५।८

४६ तण्हाय जायती सोको, तण्हाय जायती भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं?
—१६।८

४७ यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो॥
—१७।२

३७ मनुष्य का जन्म पाना कठिन है मनुष्य का जीवित रहना कठिन है। सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है और बुद्धों (ज्ञानियों) का उत्पन्न होना कठिन है।

३८ पापाचार का सर्वथा नहीं करना पुण्य का संचय करना स्व चित्त को विशुद्ध करना—यही बुद्धों की शिक्षा है।

३९ क्षमा (सहिष्णुता) परम तप है।

४० स्वर्णमुद्राओं की वर्षा होने पर भी अतृप्त मनुष्य को विषयों से तृप्ति नहीं होती।

४१ विजय से वैर की परंपरा बढ़ती है पराजित व्यक्ति मन में कुढ़ता रहता है। जो जय और पराजय को छोड़ देता है वही सुखी होता है।

४२ राग से बढ़कर और कोई अग्नि नहीं है द्वेष से बढ़कर और कोई पाप नहीं है।

४३ शान्ति से बढ़कर सुख नहीं है।

४४ भूख सबसे बड़ा रोग है।

४५ आरोग्य परम लाभ है संतोष परम धन है। विश्वास परम बन्धु है और निर्वाण परम सुख है।

४६ तृष्णा से शोक और भय होता है। जो तृष्णा से मुक्त हो गया उसे न शोक होता है न भय।

४७ जो उत्पन्न क्रोध को चलते रथ की तरह रोक लेता है उसी को मैं सारथि कहता हूँ। बाकी लोग तो सिर्फ लगाम पकड़ने वाले हैं।

४८ अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलीकवादिनं॥

—१७।३

४९ मलं वण्णस्स कोसज्जं, पमादो रक्खतो मलं।

—१८।७

५० अविज्जा परमं मलं।

—१८।९

५१ नत्थि मोहसमं जालं, नत्थि तण्हासमा नदी।

—१८।१७

५२ सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं।

—१८।१८

५३ आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।

—१८।२१

५४ न तेन पण्डितो होति, यावता बहु भासति।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो ति पवुच्चति॥

—१९।३

५५ न तेन थेरो होति, येनस्स पलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो ति वुच्चति।
यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो ति पवुच्चति॥

—१९।५।६

५६ न मुण्डकेन समणो, अब्बतो अलिकं भणं।

—१९।९

५७ न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं, अरियो ति पवुच्चति॥

—१९।१५

५८ मत्ता सुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं।
चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं॥

—२१।१

४८ अक्रोध (क्षमा) से क्रोध को जीते, भलाई से बुराई को जीते, दान से कृपण को जीते और सत्य से असत्यवादी को जीते।

४९ आलस्य सुन्दरता का मैल है, असावधानी रक्षक (पहरेदार) का मैल है।

५० अविद्या सबसे बड़ा मैल है।

५१ मोह के समान कोई जाल नहीं। तृष्णा के समान और कोई नदी नहीं।

५२ दूसरों के दोष देखना आसान है। अपने दोष देख पाना कठिन है।

५३ आकाश में कोई किसी का पदचिह्न नहीं है, बाहर में कोई श्रमण नहीं है।

५४ बहुत बोलने से कोई पंडित नहीं होता। जो क्षमाशील, वैररहित और निर्भय होता है वही पंडित कहा जाता है।

५५. सिर के बाल सफेद हो जाने से ही कोई स्थविर नहीं हो जाता। आयु के परिपक्व होने पर मनुष्य केवल मोघजीर्ण (व्यर्थ का) वृद्ध होता है। जिस में सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वस्तुतः वही विगतमल धीर व्यक्ति स्थविर कहा जाता है।

५६ जो अव्रती है, मिथ्याभाषी है, वह सिर मुंडा लेने भर से श्रमण नहीं हो जाता।

५७ जो प्राणियों की हिंसा करता है वह आर्य नहीं होता। सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा भाव रखने वाला ही आर्य कहा जाता है।

५८ यदि थोड़ा सुख छोड़ देने से विपुल सुख मिलता हो तो बुद्धिमान् पुरुष विपुल सुख का विचार करके थोड़े सुख का मोह छोड़ दे।

५९ एकस्स चरितं सेय्यो, नत्थि बाले सहायता।

—२३।११

६० सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।

—२४।२१

६१ हनन्ति भोगा दुम्मेधं।

—२४।२२

६२ तिणदोसानि खेत्तानि, रागदोसा अयं पजा।

—२४।२३

६३ सलाभं नातिमञ्ञेय्य नाञ्ञेसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु समाधिं नाधिगच्छति॥

—२५।६

६४ समचरिया समणो ति वुच्चति।

—२६।६

६५ यतो यतो हिंसमनो निवत्तति,
ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं।

—२६।७

६६ किं ते जटाहि दुम्मेध! किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि॥

—२६।१२

५९ अकेला चलना अच्छा है, किन्तु मूर्ख का संग करना ठीक नहीं है।

६० धर्म का दान सब दानों से बढ़कर है।
धर्म का रस सब रसों से श्रेष्ठ है।

६१ दुर्बुद्धि अज्ञानी को भोग नष्ट कर देते हैं।

६२ खेतों का दोष तृण (घास फूस) है मनुष्यों का दोष राग है।

६३ अपने लाभ की अवहेलना न करे दूसरों के लाभ की स्पृहा न करे।
दूसरों के लाभ की स्पृहा करने वाला भिक्षु समाधि नहीं प्राप्त कर सकता।

६४ जो समता का आचरण करता है वह समण (श्रमण) कहलाता है।

६५ मन ज्यों ज्यों हिंसा से दूर हटता है त्यों त्यों दुःख शान्त होता जाता है।

६६ मूर्ख! जटाओं से तेरा क्या बनेगा और मृग छाला से भी तेरा क्या होगा? तेरे अन्दर में तो राग द्वेष आदि का मल भरा पड़ा है बाहर क्या धोता है?

---

१ भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित धम्मपद
मास्टर खिलाड़ी लाल एण्ड सन्स, वाराणसी, संस्करण

सुत्तपिटक

उदान[1] की सूक्तियाँ

●

१ न उदकेन सुची होती, बह्वेत्थ न्हायती जनो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो॥ —१।९

२ अब्यापज्जं सुखं लोके पाणभूतेसु संयमो। —२।१

३ सुखा विरागता लोके। —२।१

४ यं च कामसुखं लोके, यंचिदं दिवियं सुखं।
तण्हक्खयसुखस्सेत, कलं नाग्घन्ति सोलसिं॥ —२।२

५ सुखकामानि भूतानि। —२।३

६ फुसन्ति फस्सा उपधिं पटिच्च,
निरूपधिं केन फुसेय्युं फस्सा। —२।

७ जनो जनस्मिं पटिबन्धरूपो। —२

---

१ भिक्षु जगदीश काश्यप संपादित, नवनालन्दा संस्करण।

सुत्तपिटक

उदान की सूक्तियां

●

१ स्नान तो प्राय सभी लोग करते हैं किन्तु पानी से कोई शुद्ध नहीं होता। जिसमें सत्य है और धर्म है वही शुद्ध है वही ब्राह्मण है।

२ छोटे-बड़े सभी प्राणियों के प्रति संयम और मित्रभाव का होना ही वास्तविक सुख है।

३ संसार में वीतरागता ही सुख है।

४ जो इस लोक में कामसुख हैं और जो परलोक में स्वर्ग के सुख हैं—वे सब तृष्णा के क्षय से होने वाले आध्यात्मिक सुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं।

५ सभी प्राणी सुख चाहते हैं।

६ उपाधि के कारण ही स्पर्श (सुख दुःखादि) होते हैं उपाधि के मिट जाने पर स्पर्श कैसे होंगे ?

७ एक व्यक्ति दूसरे के लिए बन्धन है।

८ सुखिनो वत ये अकिञ्चना। —२।६

९ असातं सातरूपेन, पियरूपेन अप्पियं।
दुक्खं सुखस्स रूपेन, पमत्तमतिवत्तति॥ —२।८

१० सब्बं परवसं दुक्खं, सब्बं इस्सरियं सुखं। — ॥

११ यस्स नित्तिण्णो पङ्को, मद्दितो कामकण्टको।
मोहक्खयं अनुप्पत्तो, सुखदुक्खेसु न वेधती स भिक्खू। —३।२

१२ यथापि पब्बतो सेलो, अचलो सुप्पतिट्ठितो।
एवं मोहक्खया भिक्खु पब्बतो व न वेधती॥ —३।४

१३ यम्हि न माया वसती न मानो,
यो वीतलोभो अममो निरासो।
पनुण्णकोधो अभिनिब्बुतत्तो,
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू॥ —३।५

१४ असुभा भावेतब्बा रागस्स पहानाय।
मेत्ता भावेतब्बा ब्यापादस्स पहानाय।
आनापानस्सति भावेतब्बा वितक्कुपच्छेदाय।
अनिच्चसञ्ञा भावेतब्बा अस्मिमानसमुग्घाताय॥ —४।१

१५ खुद्दा वितक्का सुखुमा वितक्का,
अनुग्गता मनसो उप्पिलावा। —४।

८ जो अकिञ्चन हैं वे ही सुखी हैं।

६ बुरे को अच्छे रूप में, अप्रिय को प्रियरूप में, दुःख को सुखरूप में प्रमत्त लोग ही समझा करते हैं।

१० जो पराधीन है वह सब दुःख है, और जो स्वाधीन है वह सब सुख है।

११ जो पाप पंक को पार कर चुका है जिस ने कामवासना के कांटों को कुचल दिया है जो मोह को क्षय कर चुका है और जो सुख दुःख से विद्ध नहीं होता है वही सच्चा भिक्षु है।

१२ जैसे ठोस चट्टानों वाला पर्वत अचल होकर खड़ा रहता है वैसे ही मोह के क्षय होने पर भिक्षु भी शांत और स्थिर रहता है।

१३ जिस में न माया (दम्भ) है न अभिमान है न लोभ है न स्वार्थ है न तृष्णा है और जो क्रोध से रहित तथा प्रशान्त है वही ब्राह्मण है वही श्रमण है और वही भिक्षु है।

१४ राग के प्रहाण के लिए अशुभ[1] भावना का अभ्यास करना चाहिए।
द्वेष के प्रहाण के लिए मैत्री भावना का अभ्यास करना चाहिए।
बुरे वितर्कों का उच्छेद करने के लिए आनापान[2] स्मृति का अभ्यास करना चाहिए।
अहं भाव का नाश करने के लिए अनित्य भावना का अभ्यास करना चाहिए।

१५ अन्तर में उठने वाले अनेक क्षुद्र और सूक्ष्म वितर्क ही मन को उत्पीडित करते हैं।

---

१ अशुचि भावना।
२ श्वास प्रश्वास पर चित्त स्थिर करना।

१६ शरीर से संयमहीन प्रवृत्ति करने वाला, मिथ्या सिद्धान्त को मानने वाला और निरुद्यमी आलसी व्यक्ति मार की पकड़ में आ जाता है।

१७ संयत मनुष्य दुर्वचनों को उसी प्रकार सहन करते हैं जिस प्रकार युद्ध में बाणों से आहत होने पर हाथी।

१८ मेरा जीवन भी भद्र (मंगल) है और मरण भी भद्र है।

१९ जिसको न जीवन की तृष्णा है और न मृत्यु का शोक है, वह ज्ञानी धीर पुरुष शोक के प्रसंग में भी कभी शोक नहीं करता है।

२० अपने से बढ़कर अन्य कोई प्रिय नहीं है।

२१ कालिमा से रहित शुद्ध श्वेत वस्त्र रंग को ठीक से पकड़ लेता है।
(इसी प्रकार शुद्ध हृदय व्यक्ति भी धर्मोपदेश को सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर लेता है।)

२२ पण्डित वह है जो जीते जी पापों को त्याग देता है।

२३ यदि सचमुच ही तुम दुःख से डरते हो और तुम्हें दुःख अप्रिय है, तो फिर प्रकट या गुप्त किसी भी रूप में पाप कर्म मत करो।

२४ यदि तुम पाप कर्म करते हो या करना चाहते हो तो दुःख से छुटकारा नहीं हो सकेगा, चाहे भाग कर कहीं भी चले जाओ।

२५ छिपा हुआ (पाप) लगा रहता है, खुलने पर नहीं लगा रहता। इसलिए छिपे पाप को खोल दो, आत्मालोचन के रूप में प्रकट कर दो, फिर वह नहीं लगा रहेगा।

२६ आर्य जन पाप में नहीं रमते, शुद्ध जन पाप में नहीं रमते।

साधु पुरुषों को साधु कर्म (सत्कर्म) करना सुकर है पापियों को साधु कर्म करना दुष्कर है।

पापियों को पाप कर्म करना सुकर है आर्यजनों को पाप कर्म करना दुष्कर है।

भगवान के निकट ... श्रमण और परिव्राजक ... पाखण्डी कर सर्व की सभा चोरी बातें करते हैं परन्तु वे क्या कर रहे हैं यह स्वयं नहीं जान पाते।

महाराज ![1] किसी के साथ रहने से ही उसके शील का पता लगाया जा सकता है, वह भी कुछ दिन नहीं बहुत दिनों तक
वह भी बिना ध्यान से नहीं किन्तु ध्यान से
बिना बुद्धिमानी से नहीं किन्तु बुद्धिमानी से।

हे महाराज व्यवहार करने पर ही मनुष्य की प्रामाणिकता का पता लगता है।

हे महाराज आपत्ति काल में ही मनुष्य के धैर्य का पता लगता है।

हे महाराज, बातचीत करने पर ही किसी की प्रज्ञा (बुद्धिमानी) का पता चल सकता है।

हर कोई काम करने को तैयार नहीं हो जाना चाहिए दूसरे का गुलाम होकर नहीं रहना चाहिए किसी दूसरे के भरोसे पर जीना उचित नहीं धर्म के नाम पर धंधा शुरू नहीं कर देना चाहिए।

धर्म के केवल एक ही अंग को देखने वाले आपस में झगड़ते हैं विवाद करते हैं।

संसार के अनजीव अहंकार और परकार से (भरे तरे से) चक्कर में ही पड़े रहते हैं।

श्रावस्ती नरेश प्रसेनजित के प्रति तथागत का उपदेश २६ से ३२।

३६ तत्त्वदर्शी साधक को यह द्वैत नहीं होता कि यह मैं करता हूँ या कोई दूसरा करता है।

३७ विभिन्न मत पन्थों को लेकर झगड़ने वाले संसारबन्धन से कभी मुक्त नहीं हो सकते।

३८ जैसे पतंग उड़ उड़कर जलते प्रदीप पर आ गिरते हैं वैसे ही अज्ञजन दृष्ट और श्रुतवस्तु के व्यामोह में फंस जाते हैं।

३९ तभी तक खद्योत (जुगनू) टिम टिमाते हैं जब तक सूरज नहीं उगता। सूरज के उदय होते ही उनका टिम टिमाना बन्द हो जाता है वे हत प्रभ हो जाते हैं।

४० सूखी हुई नदी की धारा नहीं बहती लता कट जाने पर और नहीं फलती।

४१ यदि पानी सर्वत्र सर्वदा मिलता रहे तो फिर कुएँ से क्या करना है?

४२ तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी के लिए रागादि कुछ नहीं हैं।

४३ आसक्त का चित्त चंचल रहता है। अनासक्त का चित्त चंचल नहीं होता है।

४४ राग नहीं होने से आवागमन नहीं होता है।

४५ दान देने से पुण्य बढ़ता है संयम करने से वैर नहीं बढ़ पाता है।

वहुत्तर

४६ दुस्सीलो सीलविपन्नो सम्मूढो काल करोति । —८।१

४७ बुल्ल हि जनो पव्वधति,
तिण्णा मेधाविनो जना । —८।६

४८ सद्धि चरमेकतो वस
मिस्सा अञ्ञजनेन वेदगू ।
विद्वा पजहाति पापक
कोञ्चो खीरपको व निन्नग ॥ —८।७

४९ यस नत्थि पिय नत्थि तस दुक्ख । —८।

सुत्तपिटक

इतिवुत्तक[1] की सूक्तियाँ

●

१ मोहं भिक्खवे एकधम्मं पजहथ,
अहं वो पाटिभोगो अनागामिताया।

—१।१

२ सुखा सङ्घस्स सामग्गी समग्गानं चनुग्गहो।
समग्गरतो धम्मट्ठो योगक्खेमा न धंसति॥

—१।१८

३ अप्पमादं पसंसन्ति पुञ्ञकिरियासु पण्डिता।

—१।२३

४ भोजनम्हि च मत्तञ्ञू, इन्द्रियेसु च संवुतो।
कायसुखं चेतोसुखं सुखं सो अधिगच्छति॥

—२।२

५ द्वेमे, भिक्खवे, सुक्का धम्मा लोकं पालेन्ति।
कतमे द्वे ?
हिरी च, ओत्तप्पं च।

—२।१

६ सुत्ता जागरितं सेय्यो नत्थि जागरतो भयं।

—२।

---

१ भि। जगदीश काश्यप सम्पादित नवनालन्दासंस्करण।

सुत्तपिटक

इतिवुत्तक की सूक्तियां

●

१ भिक्षुओ एक मोह को छोड़ दो मैं तुम्हारे अनागामी (निर्वाण) का जामिन होता हूँ।

२ संघ का मिलकर रहना सुखदायक है। संघ में परस्पर मेल बढ़ाने वाला मेल करने में लीन धार्मिक व्यक्ति कभी योग-क्षेम से वंचित नहीं होता।

३ बुद्धिमान् लोग पुण्य कर्म (सत्कर्म) करने में प्रमाद न करने की प्रशंसा करते हैं।

४ जो भोजन की मात्रा को जानता है और इन्द्रियों में संयमी है वह बड़े आनन्द से शारीरिक तथा मानसिक सभी सुखों को प्राप्त करता है।

५ भिक्षुओ ! दो परिशुद्ध बातें लोक का संरक्षण करती हैं ?
कौन सी दो ?
लज्जा और संकोच।

६ सोने से जागना श्रेष्ठ है जागने वाले को कहीं कोई भय नहीं है।

७ असंयमी और दुराचारी होकर राष्ट्र पिण्ड (देश का अन्न) खाने की अपेक्षा तो अग्निशिखा के समान तप्त लोहे का गोला खा लेना श्रेष्ठ है।

८ अपने ही मन में उत्पन्न होने वाले लोभ, द्वेष और मोह पाप चित्त वाले व्यक्ति को वैसे ही नष्ट कर देते हैं जैसे कि केले के वृक्ष को उसका फल।

९ *प्रज्ञा (बुद्धि) की आँख ही सर्वश्रेष्ठ आँख है।*

१० जो जैसा मित्र बनाता है और जो जैसे सम्पर्क में रहता है, वह वैसा ही बन जाता है क्योंकि उसका सहवास ही वैसा है।

११ असत्पुरुष (दुर्जन) नरक में ले जाते हैं और सत्पुरुष (सज्जन) स्वर्ग में पहुँचा देते हैं।

१२ जिस प्रकार थोड़ी लकड़िया के क्षुद्र बेड़े पर बैठ कर समुद्रयात्रा करने वाला व्यक्ति समुद्र में डूब जाता है उसी प्रकार आलसी के साथ अच्छा आदमी भी बरबाद हो जाता है।

१३ बुद्धिमान एवं निरंतर उद्योगशील व्यक्ति के साथ रहना चाहिए।

१४ हे भिक्षु, मनुष्य जन्म पा लेना ही देवताओं के लिए सुगति (अच्छी गति) प्राप्त करना है।

१५ चलते खड़े होते बैठते या सोते हुए जो व्यक्ति चित्त को शांत रखता है वह अवश्य ही शांति प्राप्त कर लेता है।

१६ लोभ अनर्थ का जनक है, लोभ चित्त को विकृत करने वाला है आश्चर्य है लोभ के रूप में अपने अन्दर ही पैदा हुए खतरे को लोग नहीं जान पा रहे हैं।

१७ लोभी न परमार्थ को समझता है और न धर्म को। वह तो धन को ही सब कुछ समझता है। उसके अन्तरतम में गहन अन्धकार छाया रहता है।

१८ जो पाप कर्म न करने वाले निर्दोष व्यक्ति पर दोष लगाता है तो वह पाप पलटकर उसी दुष्ट चित्त वाले दूषित व्यक्ति को ही पकड़ लेता है।

१९ विष के एक घड़े से समुद्र को दूषित नहीं किया जा सकता क्योंकि समुद्र अतीव महान् है विशाल है। वैसे ही महापुरुष को किसी की निन्दा दूषित नहीं कर सकती।

२० भिक्षुओ! तीन अग्नियाँ हैं।
कौन सी तीन अग्नियाँ?
राग की अग्नि, द्वेष की अग्नि और मोह की अग्नि।

२१ गृहस्थ और प्रव्रजित (साधु)—दोनों ही एक दूसरे के सहयोग से कल्याणकारी सर्वोत्तम सद्धर्म का पालन करते हैं।

२२ जो धूर्त हैं, क्रोधी हैं, बातूनी हैं, चालाक हैं, घमंडी हैं और एकाग्रता से रहित हैं, वे सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म में उन्नति नहीं कर सकते हैं।

२३ साधक यतना से चले, यतना से खड़ा हो, यतना से बैठे और यतना से ही सोये।

सुत्तपिटक

सुत्तनिपात की सूक्तियां

●

१ जो चढ़े क्रोध को वसे ही शान्त कर देता है जसे कि देह में फलते हुए सर्पविष को औषधि वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को अर्थात् लोक पर लोक को छोड़ देता है साँप जसे अपनी पुरानी कचुली को।

२ जो वेग से बहने वाली तृष्णारूपी सरिता को सुखाकर नष्ट कर देता है वह भिक्षु इस पार उस पार को अर्थात लोक परलोक को त्याग देता है साँप जसे अपनी पुरानी कचुली को।

३ विषय भोग की उपधि ही मनुष्य की चिन्ता का कारण है जो निरुपधि हैं, विषय भोग से मुक्त हैं व कभी चिताकुल नहीं होते।

४ श्रेष्ठ और समान मित्रो की संगति करनी चाहिए।

१५ यो चत्तानं समुक्कंसे, परे च मवजानति।
जिहीनो सेन मानेन, तं जञ्ञा वसलो इति॥

—१।७।१

१६ न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥

—१।७।१

१७ न च खुद्द समाचरे किञ्चि,
येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं।

—१।८।३

१८ सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता।

—१।८।३

१९ न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचिनं कञ्चि।

—१।८।६

२० मेत्तं च सब्बलोकस्मि मानसं भावये अपरिमाणं।

—१।८।८

२१ सच्चं हवे सादुतरं रसानं।

—१।१०।२

२२ धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।

—१।१०।२

२३ पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं।

—१।१०।२

२४ विरियेन दुक्खं अच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झति।

—१।१०।४

२५ सद्धाय तरती ओघं।

—१।१०।४

२६ पतिरूपकारी धुरवा उट्ठाता विन्दते धनं।

—१।१०।७

१५. जो अपनी बडाई मारता है दूसर का अपमान करता है किन्तु बडाई क योग्य सत्कम स रहित ह उसे वृपन (शूद्र) समझना चाहिए।

१६ जाति स न कोई वृपन (शूद्र) होता है और न कोई ब्राह्मण। कर्म से ही वृपल हाता है और कम से ही ब्राह्मण।

१७ ऐसा कोई क्षुद्र (ओछा) आचरण नहा करना चाहिए जिसस विद्वान् लोग बुरा बताए।

१८ *विश्व के सब प्राणी सुखी हो।*

१९ किसी को धोखा नहा देना चाहिए और न किसी का अपमान करना चाहिए।

२ विश्व के समस्त प्राणियो के साथ असीम मत्री की भावना बढ़ाए।

२१ सब रसो म सत्य का रस ही स्वा तर (श्रेष्ठ) है।

२२ सम्यक प्रकार से आचरित धम सुख देता है।

२३ प्रज्ञामय (बुद्धियुक्त) जोवन को ही श्रेष्ठ जीवन कहा है।

२४ मनुष्य पराक्रम के द्वारा दु खों से पार होता है और प्रज्ञा स परिशुद्ध होता है।

२५ मनुष्य श्रद्धा से ससार प्रवाह को पार कर जाता है।

२६ काय के अनुरूप प्रयत्न करने वाला धीर व्यक्ति खूब लक्ष्मी प्राप्त करता है।

२७ सच्चेन कित्ति पप्पोति, ददं मित्तानि गन्थति । —१।१०।३

२८ यस्सेते चतुरो धम्मा सद्धस्स घरमेसिनो ।
सच्चं धम्मो धिती चागो, स वे पेच्च न सोचति ॥ —१।१०।४

२९ अरोसनेय्यो सो न रोसेति कञ्चि,
तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति ॥ —१।१२।११

३० अनयं पियं वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति ।
अकरोन्तं भासमानं परिजानन्ति पण्डिता ॥ —२।३।२

३१ स वे मित्तो यो परेहि अभेज्जो । —२।३।३

३२ निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं । —२।३।५

३३ यथा माता पिता भाता अञ्ञे वापि च ञातका ।
गावो नो परमा मित्ता, यासु जायन्ति ओसधा ॥ —२।७।१३

३४ तयो रोगा पुरे आसुं इच्छा अनसनं जरा ।
पसूनं च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागमुं ॥ —२।७।२८

३५ यथा नरो आपगं ओतरित्वा,
महोदिकं सलिलं सीघसोतं ।
सो वुय्हमानो अनुसोतगामी
किं सो परे सक्खति तारयेतुं ॥ —२।८।४

३६ विञ्ञातसारानि सुभासितानि । —२।८।९

२७ सत्य से कीर्ति प्राप्त होती है और सहयोग (दान) से मित्र अपनाए जाते हैं।

२८ जिस श्रद्धाशील गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार धर्म हैं उसे परलोक में पछताना नहीं पड़ता।

२९ जो न स्वयं चिढ़ता है और न दूसरों को चिढ़ाता है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं।

३० जो अपने मित्रों से बेकार की मीठी मीठी बातें करता है, किन्तु अपने कहे हुए वचनों को पूरा नहीं करता है, ज्ञानी पुरुष उस मित्र की निंदा करते हैं।

३१ वही सच्चा मित्र है, जो दूसरों के बहकावे में आकर फूट का शिकार न बने।

३२ धर्मप्रीति का रस पान कर मनुष्य निर्भय और निष्पाप हो जाता है।

३३ माता, पिता, भाई एवं दूसरे ज्ञाति—बंधुओं की तरह गायें भी हमारी परम मित्र हैं, जिनसे कि औषधियां उत्पन्न होती हैं।

३४ पहले केवल तीन रोग थे—इच्छा, भूख और जरा। पशुवध प्रारम्भ होने पर अट्ठानवें रोग हो गए।

३५ जो मनुष्य तेज बहने वाली विशाल नदी में धारा के साथ बह रहा है वह दूसरों को किस प्रकार पार उतार सकता है? (इसी प्रकार जो स्वयं शंकाग्रस्त है वह धर्म के सम्बन्ध में दूसरों को क्या सिखाएगा?)

३६ ज्ञान सद्गुणों का सार है।

३७ जो मनुष्य आलसी और प्रमत्त है, न उसकी प्रज्ञा बढ़ती है और न उसका श्रुत (शास्त्र ज्ञान) ही बढ़ पाता है।

३८ जागो, उठ खड़े होओ, सोने से तुम्हें क्या लाभ है ? कुछ नहीं।

३९ समय चूकने पर पछताना पड़ता है।

४० अप्रमाद और विद्या से ही अन्तर का शल्य (कांटा) निकाला जा सकता है।

४१ क्या तुम अति परिचय के कारण कभी ज्ञानी पुरुष का अपमान तो नहीं करते ?

४२ बुद्ध के शिष्य यथावादी तथाकारी हैं।

४३ भिक्षु क्रोध और कृपणता को छोड़ दे।

४४ जैसे कोविलार के वृक्ष के समान ध्यान कर साधक को, गृहस्थाश्रम का त्याग कर देना चाहिए।

४५ हे मार ! कामवासना तेरी पहली सेना है, अरति दूसरी, भूख प्यास तीसरी और तृष्णा तेरी चौथी सेना है।

४६ संतों ने अच्छे वचन को ही उत्तम कहा है।

४७ सत्य ही अमृत वाणी है, यह शाश्वत धर्म है।

४८ जिस प्रकार सुन्दर पुण्डरीक कमल पानी में लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार पुण्य पाप—दोनों में आप भी लिप्त नहीं होते।

सुत्त निपातो

८१ कामपंको दुरच्चयो। —४।१३।११

८२ चुदितो वचीहि सति माभिनन्दे। —४।१४।११

८३ जनवादधम्माय न चेतयेय्य। —४।१४।१६

८४ अविज्जाय निवुतो लोको। —५।२।२

८५ अत्थ गतस्स न पमाणमत्थि। —५।६।८

८६ कथंकथा च यो तिण्णो विमोक्खो तस्स कीदिसो ? —५।६।१

८७ निब्बाण इति नं ब्रूमि, जरमच्चुपरिक्खय। —५।११।१

८८ तण्हाय विप्पहाणेन निब्बाण इति वुच्चति। —५।१४।४

८९ नंदीसंयोजनो लोको। —५।१४।२

८१ कामभोग का पङ्क दुस्तर है ।

८२ आचार्य आदि के द्वारा गल्ती बताने पर बुद्धिमान पुरुष उसका अभिनन्दन (स्वागत) करे ।

८३ साधक लोगों मे झगड़ा कराने की बात न सोचे ।

८४ यह ससार अज्ञान से ढका है ।

८५ जो जीते जी अस्त हो गया है उसका कोई प्रमाण नही रहता ।

८६ जो तृष्णा और आकाक्षा स मुक्त हो गया है उसकी दूसरी मुक्ति क्या ?

८७ मैं कहता हूँ—जरा और मृत्यु का अन्त ही निर्वाण है ।

८८ तृष्णा का सर्वथा नाश होना ही निर्वाण कहा गया है ।

८९ नदी (आसक्ति) ही ससार का बधन है ।

सुत्तपिटक

थेरगाथा[1] की सूक्तियाँ

●

१ उपसन्तो उपरतो मन्तभाणी अनुद्धतो।
धुनाति पापके धम्मे, दुमपत्तं व मालुतो॥

—१।२

२ सब्भिरेव समासेथ पण्डितेहत्थदस्सिभि।

—१।४

३ समुन्नमयमत्तानं उसुकारो व तेजनं।

—१।२९

४ सीलमेव इध अग्गं, पञ्ञवा पन उत्तमो।
मनुस्सेसु च देवेसु सीलपञ्ञाणतो जयं॥

—१।७०

५ साधु सुविहितान दस्सनं कङ्खा छिज्जति, बुद्धि वड्ढति।

—१।७५

६ यो कामे कामयति दुक्खं सो कामयति।

—१।९३

७ लाभालाभेन मथिता समाधिं नाधिगच्छन्ति।

—१।१०२

१ भि। जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित नवनालन्दा संस्करण।

सुत्तपिटक
थेरगाथा की सूक्तियां

●

१ जो उपशांत है पापों से उपरत है विचारपूर्वक बोलता है, अभिमान रहित है वह उसी प्रकार पापधर्मों को उड़ा देता है जिस प्रकार हवा वृक्ष के सूखे पत्तों को।

२ तत्त्वद्रष्टा एवं ज्ञानी सत्पुरुषों की संगति करनी चाहिए।

३ अपने आप को उसी प्रकार ठीक करो जिस प्रकार बाण बनाने वाला बाण को ठीक करता है।

४ संसार में शील ही श्रेष्ठ है प्रज्ञा ही उत्तम है। मनुष्यों और देवों में शील एवं प्रज्ञा से ही वास्तविक विजय होती है।

५ सत्पुरुषों का दर्शन कल्याणकारी है। सत्पुरुषों के दर्शन से संशय का उच्छेद होता है और बुद्धि की वृद्धि होती है।

६ जो काम भोगों की कामना करता है वह दुःखों की कामना करता है।

७ जो लाभ या अलाभ से विचलित हो जाते हैं वे समाधि को प्राप्त नहीं कर सकते।

८ मूग सत्य का एक ही पहलू देखता है और पंडित सत्य के सौ पहलुओं को देखता है।

९ साधक की समाज म जो वन्दना और पूजा होती है ज्ञानियो ने उसे पंक (कीचड़) कहा है। सत्कारूपी सूक्ष्म शल्य का साधारण व्यक्तियों द्वारा निकाल पाना मुश्किल है।

१० पापात्मा पहले अपना नाश करता है बाद म दूसरो का।

११ बाहर के वर्ण (दिखावे) से कोई ब्राह्मण (श्रेष्ठ) नहीं होता अन्तर के वर्ण (शुद्धि) से ही ब्राह्मण होता है।

१२ जिज्ञासा से ज्ञान (श्रुत) बढ़ता है ज्ञान से प्रज्ञा बढ़ती है प्रज्ञा से सद्‌अर्थ का सम्यग बोध होता है जाना हुआ सद् अर्थ सुखकारी होता है।

१३ मनुष्यों की आयु वैसे ही क्षीण हो जाती है जैसे छोटी नदियों का जल।

१४ पराजित होकर जीने की अपेक्षा युद्ध म प्राप्त वीर मृत्यु ही अधिक श्रेष्ठ है।

१५ जो पहले करने योग्य कामो को पीछे करना चाहता है वह सुख से वंचित हो जाता है और बाद म पछताता रहता है।

१६ जो कर सके वही कहना चाहिए, जो न कर सके वह नहीं कहना चाहिए। जो कहता है पर करता नहीं है उनको विद्वान जन निन्दा करते हैं।

१७ अकेला साधक ब्रह्मा के समान है दो देवता के समान है तीन गांव के समान है इससे अधिक तो केवल कोलाहल—भीड़ है।

१८ लोग प्रसन्न होते हैं या अप्रसन्न क्या मिन भाव लिए ही आते हैं ?

१९ धर्मात्मा ^यक्ति दुर्गति में नहीं जाता।

२० जिसका गौरव साथियो का प्राप्त नही होता वह सद्धर्म (कर्तव्य) से वैसे ही पतित हो जाता है जस कि थोड पानी म मछलिया ।

२१ प्रमा^ से ही वासना की धूल इकट्ठी होता है।

२२ थोडा या ज्यादा कुछ न कुछ सत्कम करके ^िन को सफल बनाओ।

२३ दूसरे के कहने से न कोई चोर होता है और न कोई साधु।

२४ धनहीन हाने पर भी बुद्धिमान यथाथत जीता है और धनवान हाने पर भी अज्ञानी यथाथत नही जीता है।

२५ मनुष्य कान से सब कुछ सुनता है आख से सब कुछ ^खता है किंतु धीर पुरुष देखी और सुनी सभी बातो को हर कही कहता न फिरे।

२६ साधक बलवान हाने पर भी दुबल की भाति रहे वाकवान होने पर भी बधिर का भांति आचरण करे।

२७ प्रज्ञावान मनुष्य दु ख म भी सुख का अनभव करता है।

२८ जो सुस्वादु रसो म आसक्त है उसका चित्त ध्यान म नहा रमता।

२९ शीलवान अपने सयम से अनेक नय मित्रो को प्राप्त कर ^ता है और दु^शील पापाचार के कारण पुरान मित्रो से भी वचित हो जाता है।

३० शील अनुपम बल है शील सर्वोत्तम ^स्त्र है शील श्रेष्ठ आभूषण है और रक्षा करने वाला अद्भुत कवच है।

१८ [illegible]

—३।४०।१४४

१९ साधु जागरतं सुत्तो।

—७।४१४।१४१

२० धम्मो हवे हतो हन्ति।

—८।४२२।४५

२१ जिव्हा तस्स द्विधा होति उरगस्सेव दिसम्पति।
यो जानं पुच्छितो पञ्हं, अञ्ञथा नं वियाकरे॥

—८।४२२।५०

२२ हीनेन ब्रह्मचरियेन खत्तिये उपपज्जति।
मज्झिमेन च देवत्तं, उत्तमेन विसुज्झति॥

—८।४२४।७५

२३ अग्गी व तिणकट्ठस्मिं कोधो यस्स पवड्ढति।
निहीयति तस्स यसो कालपक्खे व चन्दिमा॥

—१०।४४३।६०

२४ नत्थि कामा परं दुखं।

—११।४५६।६६

२५ पञ्ञाय तित्तं पुरिसं तण्हा न कुरुते वसं।

—१२।४६७।४१

२६ एरण्डा पुचिमन्दा वा अथवा पालिभद्दका।
मधुं मधुत्थिको विन्दे, सो हि तस्स दुमुत्तमो॥
खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डाल पुक्कुसा।
यम्हा धम्मं विजानेय्य सो हि तस्स नरुत्तमो॥

—१३।४७४।७८

२७ हीनजच्चो पि चे होति उट्ठाता धितिमा नरो।
आचारसीलसम्पन्नो निसे अग्गीव भासति॥

—१५।५०२।१५७

१८ जो दान देकर पछताता नहीं है यह अपने मे बड़ा ही दुष्कर कार्य है।

१९. साधु सोता हुआ भी जागता है।

२० धर्म नष्ट होने पर व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

२१ जो जानता हुआ भी पूछने पर अन्यथा (झूठ) बोलता है उसकी जीभ साँप की तरह दो टुकड़े हो जाती है।

२२ साधारण कोटि के ब्रह्मचर्य (संयम) से धर्मप्रधान क्षत्रिय जाति में जन्म होता है मध्यम से देवयोनि में और उत्तम ब्रह्मचर्य से आत्मा विशुद्ध होता है।

२३ घास व काठ में पड़ी हुई अग्नि की तरह जिसका क्रोध सदा भड़क उठता है उसका यश क्रम से ही क्षीण होता जाता है जैसे कि कृष्ण पक्ष मे चन्द्रमा।

२४ काम (इच्छा) से बढ़कर कोई दुःख नहीं है।

२५ प्रज्ञा से तृप्त पुरुष को तृष्णा अपने वश में नहीं कर सकती।

२६ चाहे एरण्ड हो नीम हो या पारिभद्र (कल्पवृक्ष) हो मधु चाहने वाले को जहाँ से भी मधु मिल जाए उसके लिए वही वृक्ष उत्तम है।
इसी प्रकार क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य शूद्र चण्डाल पुक्कुस आदि कोई भी हो जिससे भी धर्म का स्वरूप जाना जा सके जिज्ञासु के लिए वही मनुष्य उत्तम है।

२७ हीन जाति वाला मनुष्य भी यदि उद्योगी है धृतिमान है आचार और शील से सम्पन्न है तो वह रात्रि में अग्नि के समान प्रकाशमान होता है।

२८ उट्ठाहतो अप्पमज्जतो, अनुतिट्ठति देवता ।

—१७।५२१।११

२९ नालसो विन्दते सुखं ।

—१७।५२१।१२

३० द्वे व तात ! पदकानि यत्थ सब्बं पतिट्ठितं ।
उपलद्धस्स च यो लाभो, लद्धस्स चानुरक्खणा ॥

—१७।५२१।१५

३१ मा च वेगेन किच्चानि, करोसि कारयेसि वा ।
वेगसा हि कतं कम्मं मन्दो पच्छानुतप्पति ॥

—१७।५२१।२१

३२ पसन्नमेव सेवेय्य अप्पसन्नं विवज्जये ।
पसन्नं पयिरुपासेय्य, रहदं वुदकत्थिको ॥

—१८।५२८।११

३३ यो भजन्तं न भजति सेवमानं न सेवति ।
स वे मनुस्सपापिट्ठो मिगो साखस्सितो यथा ॥

—१८।५२८।१३

३४ अच्चाभिक्खणसंसग्गा, असमोसरणेन च ।
एतेन मित्ता जीरन्ति अकाले याचनाय च ॥

—१ ।५२८।१४

३५. अतिचिरं निवासेन पियो भवति अप्पियो ।

—१८।५२८।१६

३६ यस्स रुक्खस्स छायाय, निसीदेय्य सयेय्य वा ।
न तस्स साखं भञ्जेय्य, मित्तदुब्भो हि पापको ॥

—१८।५२८।१५३

३७ महारुक्खस्स फलिनो, आमं छिन्दति यो फलं ।
रसञ्चस्स न जानाति बीजञ्चस्स विनस्सति ॥
महारुक्खूपमं रट्ठं अधम्मेन पसासति ॥
रसञ्चस्स न जानाति रट्ठञ्चस्स विनस्सति ॥

—१८।५२८।१७२ १७३

१८ फल वाले महान वृक्ष से पके हुए फल को जो तोड़ता है उसका फल का रस भी मिलता है और भविष्य मे फलने वाला बीज भी नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार जो राजा महान वृक्ष के समान राष्ट्र का धर्म से प्रशासन करता है वह राज्य का रस (आनन्द) भी लेता है और उसका राज्य भी सुरक्षित रहता है।

१९ हे राजन् ! कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की तरह असत्पुरुषों की मैत्री प्रतिदिन क्षीण होती जाती है।

० हे राजन् ! शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह सत्पुरुषों की मैत्री निरन्तर बढ़ती जाती है।

१ वह मित्र अच्छा मित्र नही है जो अपने मित्र को ही पराजित करता है।

२ वह पुत्र अच्छा पुत्र नहीं है जो अपने वृद्ध गुरुजनों का भरण पोषण नहीं करता।

३ पूजा (सत्कार) के बदले में पूजा मिलती है और वन्दन के बदले में प्रतिवन्दन।

४ आज का काम आज ही कर लेना चाहिए, कौन जाने कल मृत्यु ही आ जाए ?

५ जो व्यक्ति समय पर अपना काम कर लेता है वह पीछे पछताता नहीं।

६ सभी वर्ण के लोग अधर्म का आचरण करके नरक में जाते हैं और उत्तम धर्म का आचरण करके विशुद्ध होते हैं।

७ मूर्खों की संगति करने वाला मूर्ख ही हो जाता है।

८ बड़े लोगों के यहाँ अपरिचित व्यक्ति को प्रतिष्ठा नहीं मिलती।

विसुद्धिमग्ग की सूक्तियाँ*

●

१ सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो
चित्तं पञ्ञञ्च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु
सो इमं विजटये जटं ॥[1]

—१।१

२ अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा।[2]

—१।१

३ विसुद्धी ति सब्बमलविरहितं अच्चन्तपरिसुद्धं
निब्बानं वेदितब्बं।

—१।५

४ सब्बदा सील सम्पन्नो, पञ्ञवा सुसमाहितो।
आरद्धविरियो पहितत्तो ओघं तरति दुत्तरं ॥[3]

—१।६

---

* आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा संपादित भारतीय विद्याभवन (बम्बई) संस्करण।

१—संयुत्त नि० १।३।३। २—संयुत्त नि० १।३।३। ३—संयुत्त नि० २।२।५

विसुद्धिमग्ग को सूक्तियाँ*

●

१ सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो,
चित्त पञ्ञञ्च भावय।
आतापी निपको भिक्खु
सो इम विजटये जट॥[1]

—१।१

२ अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा।[2]

—१।१

३ विसुद्धी ति सब्बमलविरहित अच्चन्तपरिसुद्ध
निब्बान वेदितब्ब।

—१।५

४ सब्बदा सील सम्पन्नो पञ्ञवा सुसमाहितो।
आरद्धविरियो पहितत्तो ओघ तरति दुत्तर॥[3]

—१।६

---

* आचार्य धर्मानन्द कोशाम्बी द्वारा सम्पादित भारतीय विद्याभवन (बम्बई) संस्करण।

१—संयुत्त नि० १।३।३। २—संयुत्त नि० १।३।३। ३—संयुत्त नि० २।२।५

विसुद्धिमग्ग की सूक्तियां*

●

१ सील पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो
चित्त पञ्ञञ्च भावय।
आतापी निपको भिक्खु
सो इम विजटये जटं॥[1]

२ अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा।[2] —१।१

३ विसुद्धी ति सब्बमलविरहित अच्चन्तपरिसुद्ध
निब्बानं वेदितब्ब। —१।१

४ सब्बदा सील सम्पन्नो पञ्ञवा सुसमाहितो।
आरद्धविरियो पहितत्तो ओघ तरति दुत्तर॥[3] —१।५

---

* आचार्य धर्मानन्द कोशाम्बी द्वारा सस्करण।

—संयुत्त नि० १।३।३।

विसुद्धिमग्ग की सूक्तियां

●

१ जो मनुष्य प्रज्ञावान् है, वीर्यवान् है और पण्डित है भिक्षु है वह शील पर प्रतिष्ठित होकर सदाचार का पालन करता हुआ चित्त (समाधि) और प्रज्ञा की भावना करता हुआ इस जटा (तृष्णा) को काट सकता है।

२ भीतर जटा (तृष्णा) है बाहर जटा है चारों ओर से यह सब प्रजा जटा से जकड़ी हुई है।

३ सब प्रकार के मलों से रहित अत्यन्त परिशुद्ध निर्वाण ही विशुद्धि है।

४ शीलसम्पन्न, बुद्धिमान चित्त को समाधिस्थ रखने वाला उत्साही और संयमी व्यक्ति कामनाओं के प्रवाह को (ओघ) तर जाता है।

५ विरियं हि किलेसानं आतापनपरितापनट्ठेन आतापो ति वुच्चति ।

—१।७

६ संसारे भयं इक्खतीति—भिक्खु ।

—१।७

७ सील सासनस्स आदि ।

—१।१०

८ सेला यथा एकघना, वातेन न समीरति ।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥[४]

—१।१०

९ सीलेन च दुच्चरितसंकिलेसविसोधनं पकासितं होति
समाधिना तण्हासंकिलेसविसोधनं
पञ्ञाय दिट्ठिसंकिलेसविसोधनं ।

—१।११

१० सिरट्ठो सीलट्ठो, सीतलट्ठो सीलट्ठो ।

—१।१९

११ हिरोत्तप्पे हि सति सीलं उप्पज्जति चेव तिट्ठति च,
असति नेव उप्पज्जति, न तिट्ठति ।

—१।२२

१२ सीलगन्धसमो गन्धो कुतो नाम भविस्सति ।
यो समं अनुवाते च पटिवाते च वायति ।

—१।२४

१३ सग्गारोहणसोपानं अञ्ञं सीलसमं कुतो ?
द्वारं वा पन निब्बान—नगरस्स पवेसने ॥

—१।२४

४—धम्मपद ६।६

५ वीर्य (शक्ति) ही क्लेशों को तपाने एवं झुलसाने के कारण आताप कहा जाता है।

६ जो संसार में भय देखता है—वह भिक्षु है।

७ शील धर्म का आरम है, आदि है।

८ जैसे ठोस चट्टानों वाला पहाड़ वायु से प्रकम्पित नहीं होता है, वैसे ही पंडित निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

९ शील से दुराचार के संक्लेश (बुराई) का विशोधन होता है।
समाधि से तृष्णा के संक्लेश का विशोधन होता है।
प्रज्ञा से दृष्टि के संक्लेश का विशोधन होता है।

१० शिरार्थ[1] (शिर के समान उत्तम होना) शील का अर्थ है। शीतलार्थ (शीतल—शांत होना) शील का अर्थ है।

११ लज्जा और संकोच होने पर ही शील उत्पन्न होता है और ठहरता है। लज्जा और संकोच के न होने पर शील न उत्पन्न होता है और न ठहरता है।

१२ शील की गन्ध के समान दूसरी गंध कहां होगी? जो पवन की अनुकूल और प्रतिकूल दिशाओं में एक समान बहती है।

१३ स्वर्गारोहण के लिए शील के समान दूसरा सोपान (सीढ़ी) कहां है? निर्वाणरूपी नगर में प्रवेश करने के लिए भी शील के समान दूसरा द्वार कहां है?

१—शिर के कट जाने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है—वैसे ही शील के टूट जाने पर मनुष्य का गुणरूप शरीर नष्ट हो जाता है। इसलिए शील शिरार्थ है।

१४ सोभन्तेवं न राजानो मुत्तामणिविभूसिता।
यथा सोभन्ति यतिनो, सीलभूसनभूसिता॥

—१।२४

१५ सद्धाविरियमायत्त चारित्तं।

—१।२६

१६ विनयो संवरत्थाय संवरो अविप्पटिसारत्थाय
अविप्पटिसारो पामुज्जत्थाय।[5]

—१।३३

१७ नाभिजानामि इत्थी वा पुरिसो वा इतो गतो।
अपि च अट्ठिसंघाटो गच्छति एस महापथे॥

—१।४५

१८ किकीव अण्डं चमरी व वालधिं
पियं व पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका
सुपेसला होथ सदा सगारवा॥

—१।६८

१९ रूपेसु सद्देसु अथो रसेसु
गन्धेसु फस्सेसु च रक्ख इन्द्रियं।
एतेहि द्वारा विवटा अरक्खिता
हनन्ति गामं व परस्सहारिनो॥

—१।१०१

५—विनयपिटक परिवार पालि १६४

१४ बहुमूल्य मुक्ता और मणियों से विभूषित राजा उतना सुशोभित नहीं होता है, जैसा कि शील के आभूषणों से विभूषित साधक सुशोभित होता है।

१५ श्रद्धा और वीर्य (शक्ति) का साधन (स्रोत) चारित्र है।

१६ विनय संवर (सदाचार) के लिए है, संवर पश्चात्ताप न करने के लिए है, पश्चात्ताप न करना प्रमोद के लिए है।

१७ मैं नहीं जानता कि स्त्री या पुरुष इधर से गया है। हाँ, इस महामार्ग से एक हड्डियों का समूह अवश्य जा रहा है।[२]

१८ जैसे टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी अपनी पूंछ की, माता अपने इकलौते प्रिय पुत्र की, काना अपनी अकेली आँखों की सावधानी के साथ रक्षा करता है, वैसे ही अपने शील की अविच्छिन्न रूप से रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा गौरव की भावना रखनी चाहिए।

१९ रूप, शब्द, रस, गंध और स्पर्शों से इन्द्रियों की रक्षा करो। इन द्वारों के खुले और अरक्षित होने पर साधक दस्युओं द्वारा लूटे हुए गाँव की तरह नष्ट हो जाता है।

२ श्री लंका के अनुराधपुर में स्थविर महातिष्य भिक्षाटन के लिए घूम रहे थे। उसी रास्ते एक कुलवधू अपने पति से झगड़ा करके सजीधजी अपने मायके जा रही थी। स्थविर को देख कर वह कामासक्त तरुणी खूब जोरों से हँसी। स्थविर ने उसके दांत की हड्डियों को देखा और उन पर विचार करते-करते ही वे अर्हत्व स्थिति को प्राप्त हो गए। पीछे से उसका पति पत्नी की खोज करता [illegible] ऊपर से कोई स्त्री निकली? महातिष्य [illegible]

३० निमित्त रूपता लद्ध परिहानि न विज्जति।
आरक्खम्हि असतम्हि लद्ध लद्ध विनस्सति॥

—४।३४

३१ समाहित वा चित थिरतर होति।

—४।३६

३२ थायदलही बहुला पन निरच्छान कथिका असप्पायो।
सो हि त कद्दमोदकमिव अच्छ उदक मलिनमेव करोति।

—४।३६

३३ बलवसद्धा हि म दपञ्ञा मुद्धप्पस ना होति
अवत्थुस्मि पसीदति।

—४।४७

३४ बलवपञ्ञो म दसद्धो केराटिकपक्ख भजति
भेसज्जसमुट्ठिना विय रोगो अतेकिच्छो होति।

—४।४७

३५ हित्वा हि सम्मा वायामं विसेस नाम मानवा।
अधिगच्छे परित्तम्पि, ठानमेत न विज्जति॥

—४।६६

३६ अ चारद्ध निमध'वा ममम र पवत्तय।

—४।६६

३७ खुद्दिका पीति सरीरे लामहसमेव कातु सक्कोति।
खणिका पीति खणे खणे वि जुप्पातसदिसा होति॥

—४।६४

३८ यत्थ पीति तत्थ सुख।
यत्थ सुख तत्थ न नियमतो पीति।

—४।१००

३९ मनसरीर उप्पत्हित्वा अनुवत्तनक नाम नत्थि।

—६।४७

१० प्राप्त निमित्त को अप्रमत्त भाव से सुरक्षित रखने वाले की परिहानि नहीं होती किन्तु अरक्षित होने पर प्राप्त निमित्त कर्ता ही क्या स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

११ समाहित (एकाग्र हुआ) चित्त ही पूर्ण स्थिरता को प्राप्त होता है।

१२ निरन्तर अपने शरीर को पोसने में ही समस्त व्यर्थ की बातें बनाने वाला व्यक्ति सम्यक्त्व के अयोग्य है। जैसे कीचड़ वाला पानी स्वच्छ पानी को गन्दा करता है, वैसे ही वह अयोग्य व्यक्ति भी साधक के स्वच्छ जीवन को मलिन बनाता है।

१३ बलवान श्रद्धावाला किन्तु मन्द प्रज्ञावाला व्यक्ति बिना सोचसमझे हर कहीं विश्वास कर लेता है अतएव (अयोग्य वस्तु एवं व्यक्ति) में भी सहसा प्रसन्न (अनुरक्त) हो जाता है।

१४ बलवान् प्रज्ञावाला किन्तु मन्द श्रद्धावाला व्यक्ति कुतर्की हो जाता है। वह औषधि से ही उत्पन्न होने वाले रोग के समान असाध्य (लाइलाज) होता है।

१५ यथोचित सम्यक् प्रयत्न के बिना मनुष्य थोड़ी-सी भी उन्नति (प्रगति) कर ले, यह कथमपि संभव नहीं है।

१६ साधना के क्षेत्र में एकदम वीर्य (शक्ति) के अत्यधिक प्रयोग को रोक कर साधक को देश काल एवं परिस्थिति के अनुकूल सम प्रवृत्ति ही करनी चाहिए।

१७ सुस्निग्ध प्रीति शरीर में केवल हलका-सा लोमहर्षण (रोमांच) ही कर सकती है।
क्षणिक प्रीति क्षण क्षण पर विद्युल्लता (बिजली चमकने) के समान होती है।

१८ जहाँ प्रीति है, वहाँ सुख है। जहाँ सुख है वहाँ नियमत प्रीति नहीं भी होती है।

१९ मृत शरीर उठकर कभी पीछा नहीं करता।

४० न चे इमस्स कायस्स, अन्तो बाहिरको सिया।
दण्ड नून गहेत्वान, काके सोणे निवारये॥
—६।६३

४१ आरकत्ता हतत्ता च किलेसारीन सो मुनि।
हतसंसारचक्कारो पच्चयादीन चारहो।
न रहो करोति पापानि अरहं तेन वुच्चति॥
—७।२५

४२ भग्गरागो भग्गदोसो भग्गमोहो अनासवो।
भग्गास्स पापका धम्मा भगवा तेन वुच्चति॥
७।५६

४३ सब्बं योब्बनं जरापरियोसानं,
सब्बं जीवितं मरणपरियोसानं।
—८।१५

४४ पत्या भिय्यो न विज्जति।[७]
—९।२

४५ खन्ती परमं तपो तितिक्खा।[८]
—९।२

४६ वेरिमनुस्सरतो कोपो उप्पज्जति।
—९।५

४७ युद्ध अप्पटियुज्झन्तो सङ्गामं जेति दुज्जयं।
—९।१५

४८ उभिन्नमत्थं चरति अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा यो सतो उपसम्मति॥[९]
—९।१५

७—संयुत्तनिकाय १।२२२। ८—धम्मपद १४।६। ९—संयुत्तनिकाय १।४।

४९ क्रोध से अन्ध हुए व्यक्ति यदि बुराई की राह पर चल रहे हैं तो तू भी क्रोध कर के क्यों उन्हीं का अनुसरण कर रहा है ?

५० तू जिन शीलों (सदाचारप्रधान व्रतों) का पालन कर रहा है उन्हीं की जड़ को काटने वाले क्रोध को दुलराता है तेरे जैसा दूसरा जड़ कौन है ?

५१ बुद्धिमान् पुरुष को सदैव आशावान् प्रसन्न रहना चाहिए उदास नहीं। मैं अपने को ही देखता हूं कि मैंने जैसा चाहा वैसा ही हुआ।

५२ समय पर अपनी वस्तु दूसरे को देनी चाहिए और दूसरे की वस्तु स्वयं लेनी चाहिए।

५३ दान अदान्त (दमन नहीं किये गए व्यक्ति) का दमन करने वाला है दान सर्वार्थ का साधक है दान और प्रिय वचन से दायक ऊंचे होते हैं और प्रतिग्राहक झुकते हैं।

५४ मैत्री भावना वाला व्यक्ति वक्ष पर बिखरे हुए मुक्ताहार के समान और सिर पर गूंथी हुई माला के समान मनुष्यों का प्रिय एवं मनोहारी होता है।

५५ मैत्री के साथ विहरने वाले का चित्त शीघ्र ही समाधिस्थ होता है।

५६ सर्वप्रथम अपने विरोधी शत्रु पर ही करुणा करनी चाहिए।

५७ दूसरे को दुःख होने पर सज्जनों के हृदय को कंपा देती है इसलिए करुणा करुणा कही जाती है।
दूसरे के दुःख को खरीद लेती है अथवा नष्ट कर देती है इसलिए भी करुणा करुणा है।

५८ मद्य पान (पेय) स्वादनीय और भी बहुत सा सुन्दर भोजन मनुष्य के शरीर में एक द्वार से प्रवेश करता है और नव द्वारों से निकल जाता है।

४९ तागन्या पनि मनं पान्ता गनि नरि गो।
नरमा तुरमि तुज्भ तो हेतं मेत्तानुभिवनानि॥

—१।२२

५० गानि रतनानि गीतानि तेन मनानिचन्तं।
को। नामुननामसि नो सता गन्निनो जना॥

—१।२२

५१ मानिनाा तुरिमा न िनि व सम नन्निना।
पन्नामि नात्मसार यथा नन्दि तथा मट्टु॥

—१।२७

५२ मत्तो सन्तर परम्ग लाभनं
परम्स स न्न मत्ता गहेनब्बं।

—१।३१

५३ अन्नदमनं ना नात सम्पत्यसाधन।
दानेन पियवाचाय उन्नमन्ति नमन्ति या॥

—१।३६

५४ उरे आमुत्तमुत्ताहारो विय सीसे पिलन्धमाला विय च
मनुस्सानं पियो होति मनापो।

—१।५१

५५ मेत्ताविहारिनो खिप्पमेव चित्तं समाधीयति।

—१।७३

५६ पठमं वेरिपुग्गलो करुणायितब्बो।

—१।८२

५७ परदुक्खे सति साधूनं हदयकम्पनं करोती ति करुणा।
किणाति वा परदुक्खं, हिंसति विनासेती ति करुणा।

—१।८२

५८ अन्न पानं खादनीयं भोजनञ्च महारहं।
एकद्वारेन पविसित्वा, नवहि द्वारेहि सन्दति॥

—११।२३

४९ क्रोध से अन्धे हुए व्यक्ति यदि बुराई की राह पर चल रहे हैं तो तू भी क्रोध करके क्यों उन्हीं का अनुसरण कर रहा है ?

५० तू जिन शीलों (सदाचारप्रधान धर्मों) का पालन कर रहा है उन्हीं की जड़ को काटने वाले क्रोध को दुलराता है तेरे जैसा दूसरा जड़ कौन है ?

५१ बुद्धिमान् पुरुष को सर्वत्र आशावान् प्रसन्न रहना चाहिए उदास नहीं । मैं अपने को ही देखता हूँ कि मैंने जैसा चाहा वैसा ही हुआ ।

५२ समय पर अपनी वस्तु दूसरे को देनी चाहिए और दूसरे की वस्तु स्वयं लेनी चाहिए ।

५३ दान अदान्त (दमन नहीं किये गए व्यक्ति) का दमन करने वाला है दान सर्वार्थ का साधक है दान और प्रिय वचन से दायक ऊँचे होते हैं और प्रतिग्राहक झुकते हैं ।

५४ मैत्री भावना वाला व्यक्ति वक्ष पर बिखरे हुए मुक्ताहार के समान और सिर पर गूँथी हुई माला के समान मनुष्यों का प्रिय एवं मनोहारी होता है ।

५५ मैत्री के साथ विहरने वाले का चित्त शीघ्र ही समाधिस्थ होता है ।

५६ सर्वप्रथम अपने विरोधी शत्रु पर ही करुणा करनी चाहिए ।

५७ दूसरे को दुःख होने पर सज्जनों के हृदय को कँपा देती है इसलिए करुणा करुणा कही जाती है ।
दूसरे के दुःख को खरीद लेती है अथवा नष्ट कर देती है इसलिए भी करुणा करुणा है ।

५८ मद्य पान (पेय) स्वादिष्ट और भी बहुत सा सुन्दर भोजन मनुष्य के शरीर में एक द्वार से प्रवेश करता है और नव द्वारों से निकल जाता है ।

५९ अन्न पान खाद्नीय और भी बहुत सुन्दर भोजन को मनुष्य अभिनन्दन करता हुआ अर्थात् सराहता हुआ खाता है किन्तु निकालते हुए घृणा करता है।

६० अन्न, पान खाद्नीय और भी बहुत सा सुन्दर भोजन एकरात्रि के परिवास में (बासी होने) से सब सड़ जाता है।

६१ राग ही रज (धूल) है रेणु (धूल) रज नहीं है। रज यह राग का ही नाम है।
द्वेष ही रज है रेणु रज नहीं है। रज यह द्वेष का ही नाम है।

६२ वीरभाव ही वीर्य है। उसका लक्षण है—उत्साहित होना।

६३ सम्यक प्रकार (अच्छी तरह) से आरम्भ किया गया कर्म ही सब सम्पत्तियों का मूल है।

६४ साधक अपने आप को गौरवान्वित करके कुलवधू के समान लज्जा से पाप को छोड़ देता है।

६५ समचारी सत्व के हृदय का अन्धकार सद्धर्म के तेज से क्षण भर में ही विलय को प्राप्त हो जाता है।

६६ अप्रिय से संयोग होना दुःख है। प्रिय से वियोग होना दुःख है।

६७ जैसे सुदृढ़ मूल (जड़) के बिल्कुल नष्ट हुए बिना कटा हुआ वृक्ष फिर भी उग आता है वैसे ही तृष्णा एवं अनुशय (मल) के समूल नष्ट हुए बिना यह दुःख भी बार-बार उत्पन्न होता रहता है।

६८ मोहसमानवुत्तिना हि तथागता त दुक्खं निरोधेन्ता दुक्खनिरोधञ्च देसेन्ता तुम्हे पटिपज्जति न पन । सुखानुवुत्तिनो पन तित्थिया ते दुक्खं निरोधेन्ता दुक्खनिरोधञ्च देसेन्ता अत्तकिलमथानुयोगमनुयोगेनापि पन पटिपज्जति, न तुम्हे ।

—१६।६२

६९. विरागा विमुच्चति ।[12]

—१६।६४

७० यथापि नाम जच्चन्धो नरो अपरिनायको ।
एकदा याति मग्गेन कुमग्गेनापि एकदा ॥
संसारे संसरं बालो तथा अपरिनायको ।
करोति एकदा पुञ्ञं अपुञ्ञमपि एकदा ॥

—१७।११६

७१ दुक्खी सुखं पत्थयति सुखी भिय्योपि इच्छति ।
उपेक्खा पन सन्तत्ता सुखमिच्चेव भासिता ॥

—१७।२३८

७२ उभो निस्साय गच्छन्ति मनुस्सा नावा च अण्णवे ।
एवं नामञ्च रूपञ्च उभो अञ्ञोञ्ञनिस्सिता ॥

—१८।३६

१२—मज्झिमनिकाय ३।२० ।

६८ तथागत (प्रबुद्ध ज्ञानी) सिंह के समान स्वभाव वाले होते हैं। वे स्वयं दुःख का निरोध करते हुए तथा दूसरों को दुःखनिरोध का उपदेश देते हुए हेतु में ध्यान रखते हैं, फल में नहीं। परन्तु अन्य साधारण मतवादी जन कुत्ते के समान स्वभाव वाले होते हैं। वे स्वयं दुःख का निरोध करते हुए तथा दूसरों को दुःखनिरोध का उपदेश देते हुए अत्तकिलमथानुयोग (नाना प्रकार के देहदंड रूप बाह्यतप के उपदेश आदि) से फल में ही ध्यान रखते हैं, हेतु में नहीं।[1]

६९ विराग से ही मुक्ति मिलती है।

७० जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति हाथ पकड़कर ले चलने वाले साथी के अभाव में कभी मार्ग से जाता है तो कभी कुमार्ग से भी चल पड़ता है। उसी प्रकार संसार में परिभ्रमण करता हुआ बाल (अज्ञानी) पथप्रदर्शक सद्गुरु के अभाव में कभी पुण्य का काम करता है तो कभी पाप का काम भी कर लेता है।

७१ दुःखी सुख की इच्छा करता है, सुखी और अधिक सुख चाहता रहता है। किंतु दुःख सुख में उपेक्षा (तटस्थ) भाव रखना ही वस्तुतः सुख है।

७२ जिस प्रकार मनुष्य और नौका—दोनों एक दूसरे के सहारे समुद्र में वर्तन करते हैं, उसी प्रकार संसार में नाम और रूप दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

१—सिंह किसी दण्ड आदि वस्तु से चोट लगने पर उस वस्तु को नहीं, किंतु मारने वाले को पीछा करता है, जब कि कुत्ता वस्तु की ओर दौड़ता है मारने वाले की ओर नहीं।

सूक्ति कण*

०

१ एकं नाम किं ? सब्बे सत्ता आहारट्ठितिका।

—खुद्दक पाठ, ४

२ द्वे नाम किं ? नाम च रूप च।

—४

३ असेवना बालान पंडितान च सेवना।
पूजा च पूजनीयान, एतं मंगलमुत्तमं॥

—५।२

४ बाहुसच्चं च सिप्पं च विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा, एतं मंगलमुत्तमं॥

—५।४

५ दानं च धम्मचरिया च, ञातकानं च संगहो।
अनवज्जानि कम्मानि एतं मंगलमुत्तमं॥

—५।६

६ सब्बे व भूता सुमना भवन्तु।

—६।१

---

* सूक्तिकण में उद्धृत सभी ग्रन्थ भिक्षु जगदीश काश्यप सम्पादित नवनालन्दा संस्करण में हैं।

सूक्ति कण

●

एक बात क्या है ? सभी प्राणी आहार पर स्थित हैं।

दो बात क्या है ? नाम और रूप।

मूर्खों से दूर रहना पंडितों का सत्संग करना पूज्यजनों का सत्कार करना—यह उत्तम मंगल है।

बहुश्रुत होना, शिल्प सीखना, विनयी=शिष्ट होना सुशिक्षित होना और सुभाषित वाणी बोलना—यह उत्तम मंगल है।

५ दान देना, धर्माचरण करना बंधु बांधवों का आदर सत्कार करना और निर्दोष कर्म करना—यह उत्तम मंगल है।

६ विश्व के सभी प्राणी सुमन हों प्रसन्न हों।

७ चेतापणिधिहेतु हि सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ।
—विमानवत्थु १।४७।८०६

८ नत्थि चित्ते पसन्नम्हि अप्पका नाम दक्खिणा ।
—१।४८।८०४

९ यहिं यहिं गच्छति पुञ्ञकम्मो
तहिं तहिं मोदति कामकामी ।
—२।३४।४००

१० सञ्जानमाना न मुगा मगाय्य,
पम्पघाताय न चेतयन्य ।
—२।३४।४११

११ सुखा हवे सप्पुरिसन सगमा ।
—२।३४।४१५

१२ उन्नमे उदकं वट्टं यथा निन्नं पवत्तति
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ।
—पेतवत्थु १।५।२०

१३ न हि अन्नेन पानेन मता गाणा समुट्ठहे ।
—१।८।४७

१४ अदानसीला न च सद्दहन्ति
दानफलं होति परम्हि लोके ।
—१।२०।२४८

१५ मित्तदुब्भोहि पापको ।
—१।२१।२४९

१६ यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा ।
न मूलं पि तं अब्बुहे अत्थो चे तादिसो सिया ॥
—१।२१।२६२

१७ कतञ्ञुता सप्पुरिसेहि वण्णिता ।
—१।२१।२६३

७ मन की एकाग्रता एवं समाधि से ही प्राणी सद्गति प्राप्त करते हैं।

८ प्रसन्न चित्त से दिया गया अल्पदान भी अल्प नहीं होता है।

९ पुण्यशाली आत्मा जहां कहीं भी जाता है सर्वत्र सफलता एवं सुख प्राप्त करता है।

१० जान-बूझ कर झूठ नहीं बोलना चाहिए और दूसरों की बुराई (विनाश) का विचार नहीं करना चाहिए।

११ सज्जन की संगति सुखकर होती है।

१२ ऊंचाई पर वर्षा हुआ जल जिस प्रकार बहकर अपने आप निचाई की ओर आ जाता है उसी प्रकार इस जन्म में दिया हुआ दान अगले जन्म में फलदायी होता है।

१३ ढेर सारे अन्न और जल से भी मरा हुआ बैल खड़ा नहीं हो सकता।

१४ जो अश्रद्धालु (दान देने से कतराते) हैं वे—परलोक में दान का फल मिलता है—इस बात पर विश्वास नहीं करते।

१५ मित्रद्रोह करना पाप (बुरा) है।

१६ राजधर्म कहता है—कि जिस वृक्ष की छाया में बैठे या सोए, यदि कोई महत्त्वपूर्ण कार्य सिद्ध होता हो तो उसको भी जड़ से उखाड़ देना चाहिए।

१७ सत्पुरुषों में कृतज्ञता की महिमा गाई है।

१८ पुण्य नहीं करने वालों के लिए न यहां (इस लोक में) सुख है न वहां (परलोक में)। पुण्य करने वालों के लिए यहां वहां दोनों जगह सुख है।

१९ जिस प्रकार व्यक्ति एक घर को छोड़कर दूसरे घर में प्रवेश करता है उसी प्रकार आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।

२० संसार के काम भोग शक्ति (घातक बाण) और शूल (भाला) के समान हैं।

२१ निर्वाण के आनन्द से बढ़कर कोई अन्य आनन्द नहीं है।

२२ अधिकतर मनुष्य अतृप्त अवस्था में ही काल के गाल में पहुंच जाते हैं।

२३ भय और वध (हिंसा) पाप का मूल है।

२४ अज्ञानियों का संसार लम्बा होता है उन्हें बार-बार रोना पड़ता है।

२५. हे काम! मैंने तेरा मूल देख लिया है तू संकल्प से पैदा होता है। मैं तेरा संकल्प ही नहीं करूंगा फिर तू कैसे उत्पन्न होगा?

२६ अपने द्वारा किया गया पाप अपने को ही मलिन करता है। अपने द्वारा न किया गया पाप अपने को विशुद्ध रखता है।

२७ दो ममत्व हैं—तृष्णा का ममत्व और दृष्टि का ममत्व।

२८ जो अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करके उन्हें फिर दुबारा नहीं करता है वह धीर पुरुष दृष्ट तथा अन्य किसी भी विषयभोग में लिप्त नहीं होगा।

२९ यो मुनाति उभे लोके, मुनि तेन पवुच्चति ।

—१।१४

३० मोन वुच्चति ञाण ।

—१।२।१४

३१ भग्गरागो ति भगवा भग्गदोसो ति भगवा ।

—१।१०।८३

३२ अक्कोधनो असन्तासी, अविकत्थी अकुक्कुचो ।
मन्तभाणी अनुद्धतो स वे वाचायतो मुनि ॥

—१।१०।८५

३३ इच्छानिदानानि परिग्गहानि ।

—१।११।१०३

३४ सब्बेव बाला सुनिहीनपञ्ञा ।

—१।१२।११५

३५ सकं सकं दिट्ठिमकंसु सच्च
तस्माहि बालो ति परं दहन्ति ।

—१।१२।११७

३६ न हेव सच्चानि बहूनि नाना ।

—१।१२।१२१

३७ न ब्राह्मणस्स परनेय्यमत्थि ।

—१।१३।१४२

३८ कामं बहु पस्सतु अप्पकं वा
न हि तेन सुद्धि कुसला वदन्ति ।

—१।१३।१४४

३९ अविज्जाय निवुतो लोको ।

—चुल्लनिद्देस पालि २।१।२

४० कोधो वुच्चति धूमो ।

—२।३।१७

२९ जो लोक परलोक—दोनों लोकों के स्वरूप को जानता है वही मुनि कहलाता है।

३० वस्तुतः ज्ञान ही मौन है।

३१ जिसका राग द्वेष भग्न (नष्ट) हो गया है वह भगवान है।

३२ जो क्रोधी नहीं है किसी को त्रास नहीं देता है अपनी बड़ाई नहीं हाँकता है चंचलतारहित है विचारपूर्वक बोलता है उद्धत नहीं है—वही वाचायत (वाक्संयमी) मुनि है।

३३ परिग्रह का मूल इच्छा है।

३४ सभी बाल जीव प्रज्ञाहीन होते हैं।

३५ सभी मतवादी अपनी अपनी दृष्टि को सत्य मानते हैं इसलिए वे अपने सिवाय दूसरों को अज्ञानी के रूप में देखते हैं।

३६ न सत्य अनेक हैं न नाना (एक दूसरे से पृथक्) हैं।

३७ ब्राह्मण (ज्ञानी) परनेय नहीं होते—अर्थात् वे दूसरों के द्वारा नहीं चलाए जाते वे स्वयं अपना पथ निश्चित करते हैं।

३८ संसार के नाम रूपों को भले ही कोई थोड़ा जाने या अधिक ज्ञानियों ने आत्मशुद्धि के लिए इसका कोई महत्त्व नहीं माना है।

३९ संसार अविद्या से पैदा होता है।

४० क्रोध मन का धुआँ है।

४१ उपधिनिदाना पभवन्ति दुक्खा।

—२।४।१६

४२ यो वे अविद्वा उपधिं करोति।

—२।४।२०

४३ न पञ्ञा होन्ति मोचेता।

—२।५।१३

४४ यस्मिं कामा न वसन्ति तण्हा यस्स न विज्जति।
कथंकथा च यो तिण्णो विमोक्खो तस्स नापरो॥

—२।१।५८

४५ अकिञ्चनं अनादानं एतं दीपं अनापरं।

—२।१०।६३

४६ अमतं निब्बानं।

—२।१०।६३

४७ संसग्गजातस्स भवन्ति स्नेहा
स्नेहन्वयं दुक्खमिदं पहोति।

—३।२

४८ एको धम्मो पहातब्बो—अस्मिमानो।

—पटिसम्भिदामग्गो १।१।१।६६

४९ द्वे धम्मा पहातब्बा—अविज्जा च भवतण्हा च।

—१।१।१।६६

५० एको समाधि—चित्तस्स एकग्गता।

—१।१।३।१०६

५१ सद्धाबलं धम्मो
पञ्ञाबलं धम्मो।

—१।१।२५ २८।२०७

५२ अतीतानुधावनं चित्तं विक्खेपानुपतितं समाधिस्स परिपन्थो।
अनागतपटिकङ्खनं चित्तं विकम्पितं समाधिस्स परिपन्थो॥

—१।३।२।८

४१ दुःखों का मूल उपाधि है।

४२ जो मूढ़ है वही उपाधि करता है।

४३ दूसरा कोई किसी को मुक्त नहीं कर सकता।

४४ जिसके न कोई काम है और न कोई तृष्णा है, और जो कथंकथा (विचिकित्सा) से पार हो गया है उसके लिए दूसरा और कोई मोक्ष नहीं है अर्थात् वह मुक्त है।

४५ रागादि की आसक्ति और तृष्णा से रहित स्थिति से बढ़कर और कोई शरणशाला द्वीप नहीं है।

४६ निर्वाण अमृत है।

४७ संसर्ग से स्नेह (राग) होता है और स्नेह से दुःख होता है।

४८ एक धर्म (बात) छोड़ना चाहिए—अहंकार।

४९ दो धर्म (बात) छोड़ देने चाहिए—अविद्या और भवतृष्णा।

५० एक समाधि है—चित्त की एकाग्रता।

५१ श्रद्धा का बल धर्म है।
प्रज्ञा का बल धर्म है।

५२ अतीत की ओर दौड़ने वाला विक्षिप्त चित्त समाधि का शत्रु है।
भविष्य की आकांक्षा से प्रकंपित चित्त, समाधि का शत्रु है।

४१ उपधिनिदाना पभवन्ति दुक्खा ।

—२।४।१६

४२ यो वे अविद्वा उपधिं करोति ।

—२।४।२०

४३ न धम्मो कोचि मोचेता ।

—२।५।३३

४४ यस्मिं कामा न वसन्ति, तण्हा यस्स न विज्जति ।
कथंकथा च यो तिण्णो विमोक्खो तस्स नापरो ॥

—२।६।४८

४५ अकिञ्चनं अनादानं एतं दीपं अनापरं ।

—२।१०।६३

४६ अमतं निब्बानं ।

—२।१०।६३

४७ संसग्गजातस्स भवन्ति स्नेहा,
स्नेहन्वयं दुक्खमिदं पहोति ।

—३।२

४८ एको धम्मो पहातब्बो—अस्मिमानो ।

—पटिसम्भिदामग्गो १।१।१।६६

४९ द्वे धम्मा पहातब्बा—अविज्जा च भवतण्हा च ।

—१।१।१।६६

५० एको समाधि—चित्तस्स एकग्गता ।

—१।१।३।१०६

५१ सद्धाबलं धम्मो
पञ्ञाबलं धम्मो ।

—१।१।२५ २८।२०७

५२ अतीतानुधावनं चित्तं विक्खेपानुपतितं समाधिस्स परिपन्थो ।
अनागतपटिकङ्खनं चित्तं विकम्पितं समाधिस्स परिपन्थो ॥

—१।३।२।८

४१ दुःखों का मूल उपाधि है।

४२ जो मूर्ख है वही उपाधि करता है।

४३ दूसरा कोई किसी को मुक्त नहीं कर सकता।

४४ जिसमें न कोई काम है और न कोई तृष्णा है और जो कथक
(विचिकित्सा) से पार हो गया है उसके लिए दूसरा और कोई मो
नहीं है अर्थात् वह मुक्त है।

४५ रागों की आसक्ति और तृष्णा से रहित स्थिति से बढ़कर और
शरणशाला द्वीप नहीं है।

४६ निर्वाण शमन है।

४७ संसर्ग से स्नेह (राग) होता है और स्नेह से दुःख होता है।

४८ एक धर्म (बात) छोड़ना चाहिए—अहंकार।

४९ दो धर्म (बात) छोड़ देने चाहिए—अविद्या और भवतृष्णा।

५० एक समाधि है—चित्त की एकाग्रता।

५१ श्रद्धा का बल धर्म है।
प्रज्ञा का बल धर्म है।

५२ अतीत की ओर दौड़ने वाला विक्षिप्त चित्त समाधि का शत्रु है।
भविष्य की आकांक्षा से प्रकंपित चित्त समाधि का शत्रु है।

५३ सभी प्राणी वैर से रहित हों कोई वैर न रखे।
सभी प्राणी सुखी हों कोई दुःख न पाए।

५४ आलस्य को भय के रूप में और उद्योग को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सतत उद्योगशील पुरुषार्थी होना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

५५ विवाद को भय के रूप में और अविवाद को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव समग्र (अखण्डित संघटित) एवं प्रसन्नचित्त रहना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

५६ जिस से प्रेम रखना हो उससे याचना नहीं करना चाहिए। बार-बार याचना करने से प्रेम के स्थान पर विद्वेष उभर आता है।

५७ मुझे सिर्फ अर्थ (भाव) से ही मतलब है। बहुत अधिक शब्दों से क्या करना है?

५८ मनुष्य को कभी अकर्म (दुष्कर्म) नहीं करना चाहिए।

५९ जो काम भोगों में लिप्त नहीं होता जिसकी आत्मा प्रशान्त (विकाररहित) है और जो सब उपाधियों से मुक्त है, ऐसा विरक्त ब्राह्मण (साधक) सदा सुखपूर्वक सोता है।

६० दो व्यक्ति अज्ञानी होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता का भार ढोता है और दूसरा वह जो वर्तमान के प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा करता है।
दो व्यक्ति विद्वान होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता नहीं करता और दूसरा वह जो वर्तमान में प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करता।

६१ दो व्यक्ति मूर्ख होते हैं—एक वह जो अधर्म में धर्म बुद्धि रखता है दूसरा वह जो धर्म में अधर्म बुद्धि रखता है।

६२ मेधावी साधक अपनी आत्मा के मल (दोष) को उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा क्षण-क्षण में साफ करता रहे जिस प्रकार कि सुनार रजत (चाँदी) के मल को साफ करता है।

५३ सब्बे सत्ता अवेरिनो होन्तु मा वेरिनो।
सुखिनो होन्तु, मा दुखिनो॥

—२।४।२।६

५४ कोसेज्जं भयतो दिस्वा, विरियारम्भ च खेमतो।
आरद्धविरिया होथ, एसा बुद्धानुसासनी॥

—चरियापिटक ७।३।१२

५५ विवाद भयतो दिस्वा अविवादं च खेमतो।
समग्गा सखिला होथ, एसा बुद्धानुसासनी॥

—७।३।१३

५६ न तं याचे यस्स पियं जिगिसे
विद्देसो होति अतियाचनाय।

—विनयपिटक, पाराजिक २।६।१११

५७ अत्थनेव मे अत्थो, किं काहसि ब्यञ्जनं बहुं।

—विनयपिटक महावग्ग १।१७।६०

५८ अकम्मं न च करणीयं।

—६।४।१०

५९ सब्बदा वे सुखं सेति ब्राह्मणो परिनिब्बुतो।
यो न लिम्पति कामेसु सीतीभूतो निरूपधि॥

—विनयपिटक, चुल्लवग्ग ६।२।१२

६० द्वे पुग्गला बाला—यो च अनागतं भारं वहति,
यो च आगतं भारं न वहति।
द्वे पुग्गला पण्डिता—यो च अनागतं भारं न वहति,
यो च आगतं भारं वहति।

—विनयपिटक परिवारवग्ग ७।२।५

६१ द्वे पुग्गला बाला—यो च अधम्मे धम्मसञ्ञी
यो च धम्मे अधम्मसञ्ञी।

—७।२।६

६२ अनुपुब्बेन मेधावी, थोकं थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो॥

—अभिधम्मपिटक (कथावत्थु पालि) १।४।२७८

●

४३ सभी प्राणी वैर से रहित हों, कोई वैर न रखे।
सभी प्राणी सुखी हों, कोई दुःख न पाए।

४४ आलस्य को भय के रूप में और उद्योग को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव उद्योगशील पुरुषार्थी होना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

४५ विवाद को भय के रूप में और अविवाद को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव समग्र (अखण्डित-संघटित) एवं प्रसन्नचित्त रहना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

४६ जिससे प्रेम रखना हो उससे याचना नहीं करना चाहिए। बार-बार याचना करने से प्रेम के स्थान पर विद्वेष उभर आता है।

४७ मुझे सिर्फ अर्थ (भाव) से ही मतलब है। बहुत अधिक शब्दों से क्या करना है?

४८ मनुष्य को कभी अकर्म (दुष्कर्म) नहीं करना चाहिए।

४९ जो काम भोगों में लिप्त नहीं होता, जिसकी आत्मा प्रशान्त (विद्वेषरहित) है और जो सब उपाधियों से मुक्त है, ऐसा विरक्त ब्राह्मण (साधक) सदा सुखपूर्वक सोता है।

५० दो व्यक्ति अज्ञानी होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता का भार ढोता है और दूसरा वह जो वर्तमान के प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा करता है।
दो व्यक्ति विद्वान होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता नहीं करता और दूसरा वह जो वर्तमान में प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करता।

५१ दो व्यक्ति मूर्ख होते हैं—एक वह जो अधर्म में धर्म बुद्धि रखता है दूसरा वह जो धर्म में अधर्म बुद्धि रखता है।

५२ समझदार साधक अपनी आत्मा के मैल (दोष) को उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा क्षण-क्षण में साफ करता रहे जिस प्रकार कि सुनार रजत (चाँदी) के मैल को साफ करता है।

५३ सभी प्राणी वैर से रहित हों, कोई वैर न रखे।
सभी प्राणी सुखी हों, कोई दुःख न पाए।

५४ आलस्य को भय के रूप में और उद्योग को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव उद्योगशील पुरुषार्थी होना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

५५ विवाद को भय के रूप में और अविवाद को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव समग्र (अखण्डित संघटित) एवं प्रसन्नचित्त रहना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

५६ जिस से प्रेम रखना हो उससे याचना नहीं करनी चाहिए। बार-बार याचना करने से प्रेम के स्थान पर विद्वेष उभर आता है।

५७ मुझे सिर्फ अर्थ (भाव) से ही मतलब है। बहुत अधिक शब्दों से क्या करना है?

५८ मनुष्य को कभी अकर्म (दुष्कर्म) नहीं करना चाहिए।

५९ जो काम भोगों में लिप्त नहीं होता, जिसकी आत्मा प्रशान्त (विग्रहरहित) है और जो सब उपाधियों से मुक्त है, ऐसा विरक्त ब्राह्मण (साधक) सदा सुखपूर्वक सोता है।

६० दो व्यक्ति अज्ञानी होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता का भार ढोता है और दूसरा वह जो वर्तमान के प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा करता है।
दो व्यक्ति विज्ञ होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता नहीं करता और दूसरा वह जो वर्तमान के प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करता।

६१ दो व्यक्ति मूढ़ होते हैं—एक वह जो अधर्म में धर्म बुद्धि रखता है, दूसरा वह जो धर्म में अधर्म बुद्धि रखता है।

६२ मेधावी साधक अपनी आत्मा के मल (दोष) को उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा क्षण-क्षण में साफ करता रहे जिस प्रकार कि कर्मार रजत (चांदी) के मल को साफ करता है।

५३ सभी प्राणी वैर से रहित हों, कोई वैर न रखे।
सभी प्राणी सुखी हों, कोई दुःख न पाए।

५४ आलस्य को भय के रूप में और उद्योग को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव उद्योगशील पुरुषार्थी होना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

५५ विवाद को भय के रूप में और अविवाद को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव समग्र (अखण्डित सघटित) एवं प्रसन्नचित्त रहना चाहिए—यह बुद्धों का अनुशासन है।

५६ जिस से प्रेम रखना हो उससे याचना नहीं करना चाहिए। बार-बार याचना करने से प्रेम के स्थान पर विद्वेष उभर आता है।

५७ मुझे सिर्फ अर्थ (भाव) से ही मतलब है। बहुत अधिक शब्दों से क्या करना है?

५८ मनुष्य को कभी अकर्म (दुष्कर्म) नहीं करना चाहिए।

५९ जो काम भोगों में लिप्त नहीं होता, जिसकी आत्मा प्रशान्त (विद्वेषरहित) है और जो सब उपाधियों से मुक्त है, ऐसा विरक्त ब्राह्मण (साधक) सदा सुखपूर्वक सोता है।

६० दो व्यक्ति अशान्त होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता का भार ढोता है और दूसरा वह जो वर्तमान के प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा करता है।
दो व्यक्ति निश्चिन्त होते हैं—एक वह जो भविष्य की चिन्ता नहीं करता और दूसरा वह जो वर्तमान में प्राप्त कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करता।

६१ दो व्यक्ति मूर्ख होते हैं—एक वह जो अधर्म में धर्म बुद्धि रखता है, दूसरा वह जो धर्म में अधर्म बुद्धि रखता है।

६२ मेधावी साधक अपनी आत्मा के मल (दोष) को उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा क्षण-क्षण में साफ करता रहे जिस प्रकार कि सुनार रजत (चांदी) के मैल को साफ करता है।